परमानन्द संदेश

फरवरी १९६२ वर्ष २ अंक ४ माघ २०१८

परमानन्द संदेश

सचित्र आध्यात्मिक, धार्मिक मासिक

वर्ष २	अङ्क ४
माघ	फरवरी
२०१८	१९६२

वार्षिक चन्दा—५) रुपए
एक प्रति का मूल्य—५० न० पै०

संस्थापक
श्री १०८ सद्गुरु बाबा शारदाराम
मुनिजी महाराज

सम्मान्य संरक्षक
श्रीमहामण्डलेश्वर
स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज

संचालक
श्री अजित मेहता बी० ई० (सिविल)

प्रधान सम्पादक
आचार्य भद्रसेन वैद्य

सम्पादक मण्डल
पं० सरयूप्रसाद शास्त्री 'द्विजेन्द्र'
श्री रमेश चन्द्र सिंह सेंगर
श्रीमती अनुसूया देवी
श्री गोविन्दराव जाना

कार्यालय
शारदा प्रतिष्ठान
सी० के० १५।५१ सुड़िया,
बुलानाला वाराणसी—१
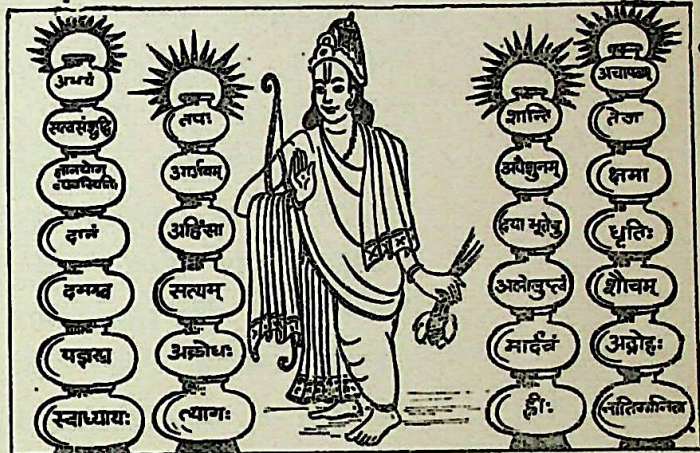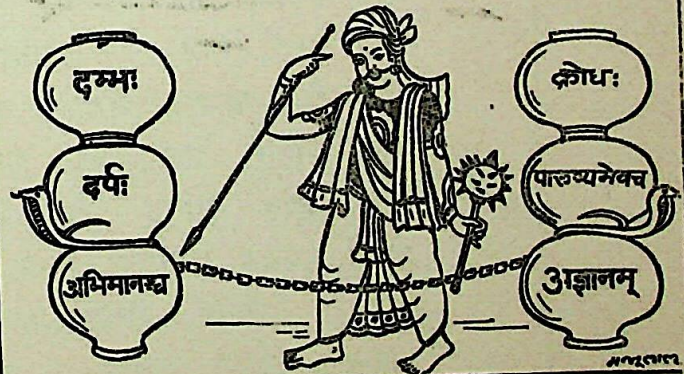
नाम

साधन नाम-सम नहिं आन ।
जपत शिव-सनकादि, सारद-नारदादि सुजान ॥
नाम के बल मिटत भीषन अशुभ भाग्य विधान ।
नाम-बल मानव लहत सुख सहज मन-अनुमान ॥
नाम टेरत टरत दारुन विपति सोक महान ।
आर्त्त करि, नर-नारि, ध्रुव सब रहे सुचि सहिदान ॥
नाम के परतापतें जल पर तरे पाषान ।
नाम-बल सागर उलाँघ्यो सहज ही हनुमान ॥
नाम-बल सम्भव सकल जे कछु असम्भव जान ।
धन्य ते नर ! रहत जिनके नाम रट की बान ॥
पाप-पुंज प्रजारिबे हित प्रबल पावक खान ।
होत छिन में छार, निकसत नाम जान-अजान ॥
नाम सुरसरि में निरन्तर करत जे जन न्हान ।
मिटत तीनों ताप सुख नहिं होत कबहुँ मलान ॥
नाम आश्रित जनन के मन बसत नित भगवान ।
जरत खरत कुवासना सब तुरत लज्जा मान ॥
नाम जीवन, नाम अमरित, नाम सुखको थान ।
नाम रत जे नाम पर, ते पुरुष अति मतिमान ॥
नाम नित आनन्द निरझर, अति पुनीत पुरान ।
मुक्त सत्वर होत जेजन करत सादर पान ॥
नाम जपत सुसिद्ध जोगी बनत समरथवान ।
नामतें उपजत सुभगति, बिराग सुभ बलवान ॥
नाम के परताप दीखत प्रकृति-दीप बुझान ।
नाम-बल ऊगत प्रभामय भानु तत्व-ज्ञान ॥
नाम की महिमा अमित, को सकै करि गुनगान ।
रामतें बड़ नाम, जेहि बल बिकत श्री भगवान ॥
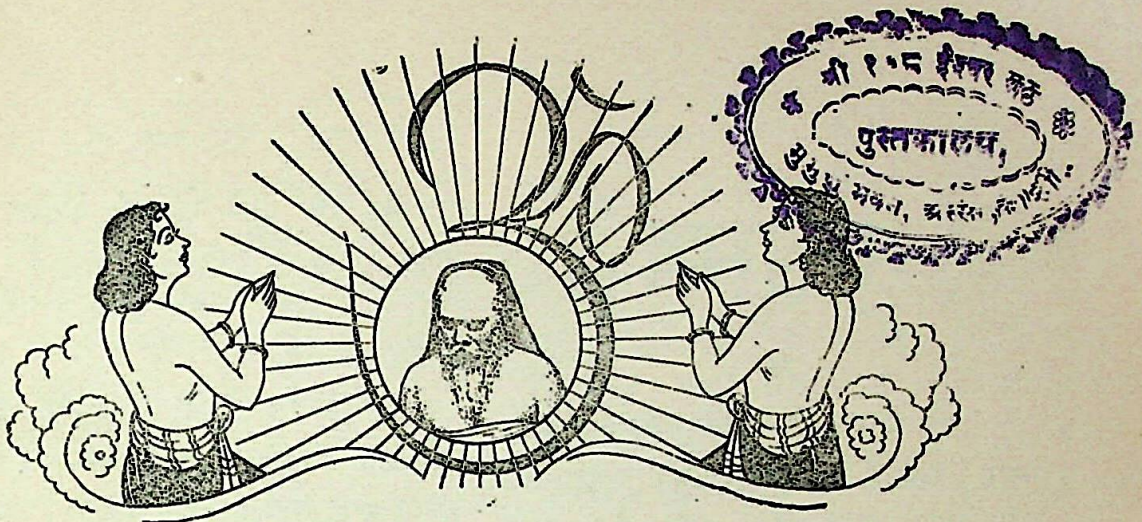
ॐ जयजय सद्गुरु शारदाराम

परमानन्द संदेश

दुख खण्डन परमानन्द मण्डन, है इस पत्र का भाव ।
पढ़ै सुनै अमलो बने, सो लख पावे प्रभाव ॥

वर्ष २ अङ्क ४	वाराणसी माघ २०१८ फरवरी १९६२ ई०	मूल्य—५० नये पैसे वार्षिक—५) रुपये

ॐ

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भूः
रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्यो-
रात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥

अ० १०।८।४४ ॥

कामना रहित, धीर, धृतिमान, सर्वज्ञ, अविनाशी सदा मुक्त, स्वयंभू, स्वसत्तामें परनिरपेक्ष, आनन्द से तृप्त, कहीं से भी न्यून नहीं, उस धीर, अजर, सदा नवीन सर्वव्यापक भगवानको जानने वाला मौत से नहीं डरता है ।

मृत्युभय

सभी मनुष्य, क्या ज्ञानी और क्या मूर्ख, मृत्युसे डरते हैं। योग दर्शनमें मृत्युभयको 'अभिनिवेश' नाम दिया गया है। उसके सम्बन्धमें वहाँ कहा गया है—

स्वरसवाही विदुषोपि तथारूढ़ोऽभिनिवेशः।

अभिनिवेश अपनी निराली चालसे चलता है, जैसे यह मृत्यु मूर्ख पर सवार है, वैसे ही विद्वान भी इसके चंगुल में हैं।

प्रथम मन्त्रमें मृत्युभयसे बचनेका योग बताया गया है। अत्यन्त अचूक उपाय है। कहा है—

तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योः।

'उस ही को जानकर मृत्युसे नहीं डरता।, मृत्यु क्या है?

माँ बच्चेको बैठी दूध पिला रही है। स्तनमें दूध समाप्त हो गया है, माँ को यह ज्ञात है, बच्चा उसे नहीं जानता। माँ बच्चेकी तृप्ति करनेके लिए उसे दूसरे स्तनमें लगानेके लिए वहाँसे हटाती है। अज्ञानी बालक रो पड़ता है। ठीक यही दशा जीवन-मरणकी है। जगदम्बाने जीवरूप बच्चेको भोग मोक्षके लिये शरीर रूपी एक स्तनसे लगा रक्खा है। शरीरकी शक्ति क्षीण हो गई, किन्तु इसकी लालसा नहीं मिटी। इसको तृप्त करनेके लिये स्नेहमयी जगदम्बा इसे दूसरे शरीरमें भेजनेके लिए पहलेसे हटाती है, इसका नाम मृत्यु है। इससे डरता जीव रोता है और शरीर न छोड़नेकी कामना करता है।

मृत्युके इस रूपको समझनेपर मृत्युभय नहीं रहता। वेद कहता है—कामना ही मृत्युका कारण है। अतः निष्काम हो जा। निष्काम होनेके लिए निष्काम भगवान्‌की उपासना कर। वह—

अकामो धीरो अमृतः।

वह कामना रहित है, अतः धीर (चंचलता रहित) और अमृत (मृत्यु बन्धनसे रहित) हैं।

वह स्वयंभू है। अपनी सत्तामें किसी दूसरेकी अपेक्षा नहीं करता! तू रस चूसता है, उसके पास जा, क्योंकि वह—

रसेन तृप्तः—रसमें तृप्त है, रससे भरपूर है।

उपनिषदोंमें कहा—

'रसो वै सः! रसंह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।

'भगवान् रस है, यह साधक उस रस (भगवान्) को प्राप्त करके आनन्दमय हो जाता है।' 'मुक्तजन तेरे बिना आनन्द नहीं प्राप्त करते हैं।'

नाना प्रकारकी सुख-सामग्री रहते हुए भी यदि किसी प्रकारका भय हो तो आनन्द नहीं मिलता। और भयसे छुटकारा तभी मिलता है जब भगवान्‌से मेल हो।

तृप्तिका कारण यह है कि वह—

न कुतश्चनोनः।

'वह किसी प्रकारसे न्यून नहीं है।'

कामनाके कारण रसमें विघात पड़ता है। कामना कमीकी द्योतक है। भगवान्‌में किसी प्रकारकी न्यूनता (कमी) नहीं है। उसको जानने और उसके उपदिष्ट साधनोंपर आचरण करनेसे मृत्युका भय भाग जाता है। यजुर्वेद ३१।१८ में भी कहा है—

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमा-
दित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय॥

मैंने सूर्यके समान प्रभावाले अन्धकारसे सर्वथा शून्य, पूर्ण परमात्माको जान लिया है, और साथ ही जान लिया है कि उस ही को जानकर मृत्युको पार कर सकता हूँ, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

इस वास्ते उपनिषद्‌कारने कहा—

तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो
विमुञ्चथ, अमृतस्यैष सेतुः॥मु० २।२।५॥

उस एक व्यापक तत्वको जानो, शेष सब बातें छोड़ दो, वही (आत्मज्ञान) अमृत (मोक्ष) का हेतु है।

इस वास्ते साधकको चाहिये कि वह मृत्यु भय भगानेके लिए उस अविनाशी, अजर, अमर, सदा एक रस बने रहने वाले भगवान्‌का ज्ञान प्राप्त करे। भगवान्‌के ज्ञानसे ही मनुष्यका सर्वविध कल्याण होता है।

भगवान्‌के सम्बन्धमें जो कुछ इस मन्त्रमें कहा है उसे अवश्य मनन करना चाहिए—

अकामः—मनुष्य नाना कामनाओंसे आक्रान्त है किन्तु भगवान् 'अकाम' है क्योंकि वह—'किसी भी प्रकारसे न्यून नहीं है' अर्थात् कामना रहित होनेके कारण सर्वथा पूर्ण है। वह ऐसा पूर्ण है कि देने पर भी उसमें कोई त्रुटि नहीं होती। औपनिषद् महात्मा कह गये हैं—'पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते' 'उस पूर्णसे पूर्ण लेकर भी पूर्ण ही शेष रहता है।'

धीर और अकाम है, उसमें चंचलता संभव नहीं है। चंचलताका अर्थ है परिणाम शीलता अर्थात् जनन-मरण। जनन-मरणसे रहित होनेके कारण वह अमृत है अर्थात् मृत्यु-रहित है। जो मृत्यु-रहित है, वह जन्मसे भी रहित है। अतः वह स्वयंभूः सदा रहने वाला है। सदा रहनेके कारण वह युवा (सदा जवान) है। युवाका एक अर्थ है सबमें मिला रहता हुआ सबसे असंपृक्त। सबको यथा योग्य मिलाता तथा समयपर पृथक भी करता है। युवा होनेके साथ वह अजर है अर्थात् कभी बूढ़ा नहीं होता। वह आत्मा सदा क्रियाशील एवं ज्ञानशील है और सर्वत्र व्यापक है। सर्वव्यापक होनेके कारण वह रससे तृप्त आनन्दघन है। क्योंकि उसे कुछ प्राप्तव्य है नहीं, जिससे उसे विक्षेप क्लेशादि हों।

ऐसे अजर-अमर, रसघन भगवान्‌को जानन, जानकर उसकी उपासना करना, मृत्यु-भयसे सचमुच तर जाना है।

सन्त वाणी

सद्गुरु बाबा शारदाराम मुनिजी महाराजका

प्रवचन

⊙
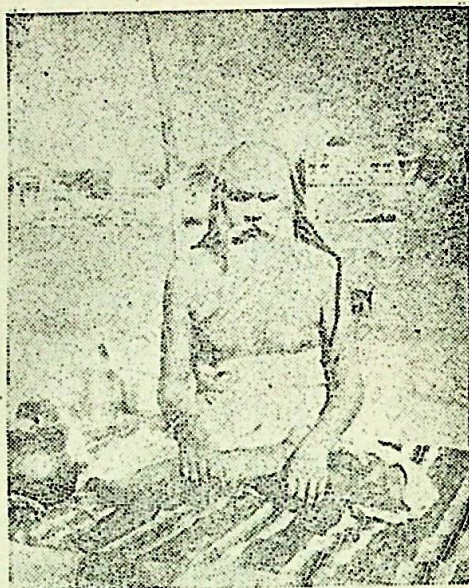
मनुष्यका मुख्य कर्तव्य

ॐ ब्रह्म को सिरनाय के आत्म करो विचार।
सदा सबँहि ॐ स्तुति, कर रहे वेद पुकार॥

भई परापत मानुख देहुरिया, गोबिन्द मिलन की यह तेरी बेरिया।
अवरि काज तेरै कितै न काम, मिल साधु संग भज केवल नाम॥
सरंजामि-लाग भवजल तरन कै, जनम बिरथा जात रंगमाया कै।
जप, तप, संजम धरम ना कमाइया, सेवा साधन जाने ना हरि राइया॥
कहैं नांनक हम नीच करमा, सरण परे की राखो सरमा।

गुरु नानकजीकी (बानी)

"भई परापत मानुख देहुरिया" अर्थात् यह मनुष्य शरीर जो मिला है यह बहुत कर्मोंका फल है। मनुष्य योनि सब योनियोंसे श्रेष्ठ है, सबसे महान है, बहुत माननीय है। मनुष्य सबको बसमें कर सकता है। मनुष्यका शरीर जो कर्म करता है उसका फल उसे मिलता है। अज्ञानवश होकर मनुष्य सोना त्याग देता है और मिट्टीको ग्रहण करता है। एक जमींदार अपने खेत में हल चला रहा था, हल चलाते चलाते जमीनमें लाल निकल आए, परन्तु जमींदारने समझा ये कोई पत्थर हैं। ऐसा समझ कर लाल उठाकर खेतके बाहर फेंकने लगा। उसी समय वहाँ से एक जौहरी गुजरा उसने जमींदारका फेंका हुआ वह लाल देखा

कि बड़ा कीमती लाल है। जौहरीने सोचा यह जमींदार मूर्ख है जो उत्तम मूल्यवान लालको फेंक रहा है। फिर जमींदारसे बोला—"क्यों भाई हम इसको उठा सकते हैं क्या?" जमींदार बोला—"तुम्हारा मन चाहे तो उठा लो।" जौहरी उस लालको लेकर राजाके पास आया। राजा लालको देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा इन्हें कहाँसे लाये हो? जौहरीने बताया कि एक राजाके पास ऐसे बहुत लाल हैं। तब राजाने जौहरीसे कहा हमें उससे मिलाओ हम उसके साथ अपनी बेटीकी शादी कर देंगे। जौहरी राजासे ऐसी 'प्रतिज्ञा' करके चला गया। जौहरी जमींदारसे जाकर कहा कि भाई तुम ये सब जो 'पत्थर' (लाल) हैं, उठा लो और हमारे साथ चलो। उनमेंसे कुछ लालोंको बेचकर जौहरीने जमींदारको एक बड़ा सुन्दर महल बनवा दिया, फिर कुछ माल खरीदे और उस जमींदारको राजाके हर प्रकारके काम काज सिखलाने लगा। जब छः सात महीनेमें जमींदार राजाके सारे व्यवहार सीख गया। तब जौहरी उस जमींदार अर्थात् नये राजाको पहले राजासे भेंट कराने ले गया। जाते समय नया राजा रास्तेमें लाल हीरा लुटाते चला। उसका बड़ा नाम हुआ। यह सब जानकर राजाने अपनी बेटीकी शादी राजासे कर दी। हम भी किसान अर्थात् जमींदार हैं, जौहरी रूप सत्गुरु हैं, राजा रूपी परमात्मा हैं, धरती रूपी यह बुद्धि है जिसमेंसे लाल रूपी प्रेम-भक्ति उत्पन्न होती है, जौहरी रूपी सत्गुरु ही इस लालका पहचान करा सकते हैं। परमात्मा रूपी राजासे हमें यह मनुष्य शरीर गोविंदके भजनके लिए मिला है। गोविन्दसे मिलनेके लिए प्राप्त हुआ है। निन्दनीय कर्म बुरे कर्म करनेके लिए यह योनि नहीं प्राप्त हुई। विषय सुखको मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े मकोड़े आदि सब अनुभव करते हैं परन्तु आत्मज्ञानको आत्मसुखको केवल मनुष्य ही प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि आत्मज्ञान प्राप्त करनेकी शक्ति मनुष्यमें है। परन्तु फिर भी उसके द्वारा आत्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं करते, विषय-भोग-संसारी-वासनामें लगकर चौरासीमें भ्रमण करते हैं। इस संसारमें करोड़ों मानव ऐसे हैं जिनकी जीवात्मा कभी हरिण तो कभी बैल तो कभी कई प्रकारके कीड़ेकी योनियोंमें रह चुकी है। परन्तु हमें उनका कुछ ज्ञान नहीं। गीतामें श्री कृष्ण अर्जुनके प्रश्नका उत्तर देते हुए कहते हैं—"हे अर्जुन मेरे और तुम्हारे बहुतसे जन्म व्यतीत हो चुके हैं परन्तु तुम अज्ञानमें ढँके होनेके कारण याद नहीं रख सकते, मैं ज्ञान द्वारा सम्पन्न हूँ इससे जानता हूँ।" राजा नहुषने इन्द्र पदको प्राप्त किया था और फिर अजगर योनिमें जा गिरा था। एक बार जब इन्द्रने गौतम ऋषिकी स्त्रीको स्पर्श किए तो उनका पुण्य फल खतम हो गया। तब ब्रह्माजीने मृत्युलोकके बड़े धर्मात्मा, चरित्रवान राजा नहुषको इन्द्र बना दिया। इन्द्र बनकर राजा नहुष इन्द्राणीकी इच्छा किए। एक प्रकारकी चाल करके नहुष को सप्तऋषियों द्वारा उठाई हुई पालकीमें बैठ कर इन्द्राणीने मिलनेको बुलाया। मार्गमें धीरे-

धीरे चलनेके कारण राजाने ऋषिको कोड़ा मारा और जल्दी चलनेको कहा। ऋषिने श्राप दे दिया कि तुम "अजगर" बन जाओ। इस प्रकार इन्द्र बना हुआ नहुष नीच कर्म और विषय-वासना के कारण नीच योनिमें गिरा। सारांश यह कि हम भी भक्ति, तप, जप, दान, पुण्य करके इन्द्र बन सकते हैं परन्तु अगर हम गन्दे कर्म करेंगे तो नीची योनियोंमें दुख भोगते रहेंगे। योगवशिष्टमें कथा आयी है—एक इन्द्रप्राना नामक ब्राह्मण था। उसके सात पुत्र थे। जब उसका शरीर गत हुआ तब सातों पुत्रोंने आपसमें सलाहकी कि कोई ऐसा काम करें जिससे जगमें हमारा नाम हो, हमें ऊँची पदवी मिले। पहलेने कहा कि संसारमें सेठ लोगको बहुत सुख है ऐसा देखने में आता है, इसलिए हमें सेठ बनना चाहिए। दूसरेने कहा—सेठोंसे बड़ा तो राजा होता है, सेठ भी राजाकी आज्ञा मानते हैं। हमें राजा बनना चाहिए। तीसरा बोला—राजासे चक्रवर्ती राजा बड़ा होता है जिसकी हुकूमत राजाओं पर भी चलती है, हमें चक्रवर्ती राजा बनना चाहिए। चौथा बोला—उनसे तो वरुण कुबेर ऊँचे हैं। पाँचवाँ बोला—उनसे भी इन्द्र बड़ा है जो विश्वपर हुकूमत करता है कुछ ऐसा करो जिससे कि हम इन्द्र बन जावें। छठवेंने कहा—इन्द्रसे तो बृहस्पति बड़े हैं जो इन्द्रके भी गुरु हैं, हमें बृहस्पति बनना चाहिए। सातवें और सबसे बड़ेने कहा—बृहस्पतिसे तो ब्रह्म बड़ा है इसलिए हमें ब्रह्म-पदको प्राप्त करना चाहिए। सब मान गए और ब्रह्मकी आराधना करके ब्रह्म-पदको प्राप्त किए।

हमें मनुष्यका जन्म मिला है, ये गोविन्द से मिलनेका बहुत अच्छा समय है, सिर्फ परमात्माका ही ध्यान करना बाकी सब कामको त्याग देना चाहिए। अब यहाँपर एक शंका होती है कि सारे कर्म त्याग देनेसे शरीरका निर्वाह कैसे होगा? पहली बात तो यह है कि सब अपने कर्मको नहीं छोड़ते, दूसरी बात यह है कि संसारमें रहकर भी बहुतसे लोग गोविन्दसे मिले हैं जैसे राजा जनक हुए हैं, राजा अजातशत्रु हुए हैं। सब कर्मोंको छोड़कर भी गोविन्द से मिलने वालोंमें दत्तात्रय इत्यादि भी हुए हैं, जो जीव अपनी आत्मामें लीन हो जाता है वह परमयोगी ज्ञानी सदाके लिए मुक्त है। कमल जलमें रहते हुए भी जलसे अलिप्त रहता है, अगर जलकी बूँद उसपर गिरती भी है तो उस पर ठहरती नहीं। संसारमें रहते हुए भी जो संसारकी मायाकी आशा नहीं करता वही योगी है।

विश्वमें दो प्रकारके धर्म हैं। अधर्म और सुधर्म, भगवान गीतामें कहते हैं—"दूसरेका धर्म भय पूर्ण है, नरक देने वाला है अर्थात् यह अधर्म है, और अपना धर्म स्वर्ग देता है अर्थात् वह सुधर्म है, अपना धर्म अर्थात् जो मनुष्य धर्म है वह करो, पशुओंका कर्म मत करो, क्योंकि मनुष्य धर्ममें भले-बुरेका ज्ञान होता है, पशुओंमें ऐसा ज्ञान नहीं होता। यह जो मनुष्य जन्म मिला है इस जन्ममें सत्संग करना चाहिए, भगवानका भजन करना चाहिए, जप करना चाहिए, तप करना चाहिए, अभ्यास करना चाहिए। अपने कर्म करते हुए भी कर्मों

के फलकी इच्छा न करनेसे शीघ्र मुक्ति मिलती है। गीता अ० १८ श्लोक ६ में श्रीकृष्णजी अर्जुनसे कहते हैं कि हे अर्जुन कर्म करो, परन्तु कर्मोंके फलकी इच्छा मत करो।

एतान्यपितु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥

एक कथा याद आ गई। एक रामदास कहार नामका आदमी था। वह एक बार परदेश गया। वहाँपर उसे अपने ही ग्रामका एक मित्र मिला, उससे बातचीत किया और अपने मित्रसे बोला कि हम सेवा करना चाहते हैं परन्तु उसके बदलेमें हम कुछ नहीं चाहते, कोई अच्छा व्यक्ति तुम्हें मालूम हो तो बताओ। उसका मित्र उस देशके राजाके दीवानका नौकर था, उसने रामदासको दिवानके पास ही सेवाके लिए लगा दिया। रामदास रोज दिवानकी हर तरहसे सेवा करता था परन्तु लेता कुछ नहीं था। एक दिन दिवानने रामदाससे कहा कि आज चार बजे कचहरीमें चाय लेकर आना। रामदास ठीक चार बजे कचहरीमें चाय लेकर गया तो दिवान किसी काममें लगा हुआ था। रामदास दरवाजे के पास ही खड़ा हो गया। जब तक रामदास दरवाजेपर खड़ा रहा तब तक राजा उसकी तरफ एक टक देखता रहा। राजाने देखा कि रामदासके नेत्रोंसे स्वामीके प्रति प्रेम टपक रहा है, चेहरा एकदम शान्त है। दिवानने कार्यसे निवृत होकर चाय पी और रामदास खाली गिलास लेकर चला गया।

रामदासके चले जानेपर राजाने दिवानसे पूछा—"यह कौन है?" दिवानने कहा—"हमारा नौकर है परन्तु सेवाके बदले कुछ लेता नहीं।" राजाने कहा—"इसे हमें दोगे?" दिवान बोला—"जब हम आपके है तो वह भी आप का ही है, आप रख लीजिए।" अब रामदास राजाके पास रहकर राजाकी सेवा करने लगा। राजाने बहुत यत्न किया रामदासको कुछ देने का। राजा बोला तुम्हारे बाल-बच्चे हैं, यदि कहो तो कुछ गाँव दे देवें। रामदास बोला कि उनकी तकदीर उनके साथ है, हमारी तकदीर हमारे साथ है। आपका आत्मा हमारी सेवासे प्रसन्न हुआ तो हमें आनन्द होगा, प्रभु हमारे ऊपर खुश होगा। इसपर प्रसन्न होकर राजाने रामदासको अपना लड़का तथा युवराज बना लिया। राजाका शरीर गत होनेपर रामदासको राजगद्दी प्राप्त हुई। राजा रूपी प्रभुमें रामदास रूपी भक्त मिलकर प्रभुरूप हो जाते हैं। परन्तु केवल निष्काम भक्त ही प्रभुरूप हो सकेगा। जो सकामी भक्त होता है वह अपनी भक्तिके बदलेमें कुछ चाहता है। गीतामें भगवान कहते हैं कि भक्त जिस प्रकारसे मेरी भक्ति करता है मैं उसे उसी प्रकारका फल देता हूँ।

जब तक जीव अपने कर्तव्यको प्राप्त नहीं कर लेता तब तक चौरासीमें भ्रमण करता रहता है। उसके लिए "पुनरपि जन्मं पुनरपिमरणं" बना रहता है।

कभी जीव रोता है, कभी गरीब बनता है, कभी अमीर बनता है, कभी हँसता है, कब तक? जब तक गोविन्द नहीं मिलता। गोविन्द के मिलनेसे जीव आत्मानन्दमें डूब जाता है, गोविन्द रूप हो जाता है। गोविन्दसे मिलनेके

लिए सतसंग करना चाहिए। क्योंकि—"बिन सतसंग विवेक न होई।" सतसंगके बिना विवेक नहीं होता, भले-बुरेका विचार नहीं होता, ज्ञान नहीं होता। जो कर्म करेंगे उसीकी तरफ विचार लगा रहता है। राजाको अपने राज्यका विचार रहता है। धनीको अपने धन बढ़ानेका ही विचार रहता है, धनीको धनकी लालसा बहुत होती है। सतसंगीको सदा ज्ञानकी ही लालसा होगी। संतोषके लिए विवेक चाहिए, संतोषके बिना कामना दूर नहीं होती, तृष्णा बनी रहती है। अपनी खेतीकी, जमीन जायदादकी, मकान की इच्छा रहती है और शरीर छूट जाता है। ब्रह्मवेत्ता इन बातोंसे बचा रहता है।

इस संसारसे पार होनेका बड़ा अच्छा संजम लगा हुआ है। यदि समुद्रको पार करना हो तो पान के जहाज या हवाई जहाजपर चढ़ कर पार हो सकते हैं। उसी प्रकार संसारसे पार होने, चौरासीसे छूटनेके दो मार्ग हैं, ब्रह्मज्ञान तथा भगवद् भक्ति। इन दोनोंके द्वारा जीवका कल्याण हो सकता है अन्यथा नहीं। जीव अपने मनुष्य जन्ममें मायामें रत रहता है और जन्मको फोकटमें ही खतम कर देता है। जीव को चाहिए कि सतसंग करे, नाम जपे, ध्यान करे। एक बार रामचन्द्रजी वशिष्ठजीसे पूछते हैं कि चरित्रहीन, पापी, सतसंगहीनकी क्या गति होगी? वशिष्ठजी कहते हैं कि यदि उनको एक क्षणके लिए भी सत्संग मिल जायेगा तो उनका कल्याण हो जावेगा, क्योंकि सत्संग और भक्ति का बीज कभी नष्ट नहीं होता। सत्संगके एक क्षणसे जो संस्कार बन जाता है वह बढ़ता जाता है और जीव कभी न कभी मुक्त हो ही जाता है।

शरीर रूपी जहाजमें जीवात्मा बैठा है। शरीर भी तीन प्रकारका है, एक स्थूल शरीर जिससे जीव संसारी दुःख, सुख, आनन्द भोगता है। दूसरा—सूक्ष्म शरीर और तीसरा—सुक्ष्म शरीरके अन्दर होता है कारण शरीर, इसमें संसारकी, विषयकी वासना बनी रहती है। ये तीन प्रकारके शरीर हैं। ब्रह्मज्ञानी इन सबसे छूटकर ब्रह्मरूप हो जाता है। हम पहलेसे ही ब्रह्म हैं परन्तु जीव अपने आपको अलग समझता है। नाम अलग-अलग हैं, अज्ञानके कारण हम जीव कहलाते हैं, वास्तवमें विश्वमें एक ब्रह्म ही भरा है। प्रकाशके सामने हम जिस रंगका शीशा रखेंगे हमें वैसा ही आकाश मिलेगा, परन्तु प्रकाश तो एक ही है। सत्संगके द्वारा प्रतीत होगा कि हम ब्रह्मसे भिन्न नहीं है।

प्रभुका जप करना, तप करना, मनको, इन्द्रियोंको विकारकी तरफ नहीं जाने देना। प्रत्येक इन्द्रियोंपर एक-एक देवता बैठे हुए हैं, क्योंकि देवता विषयमें लीन रहते हैं। मन और इन्द्रियोंको ब्रह्मकी तरफ लगायेगा तो ब्रह्म में लीन हो जावेगा। हम जीव जो दुःखी हैं यह अपने कर्मोंका फल है। अन्तमें गुरु नानक देवजी कहते हैं—"हे प्रभु यदि हम नीच कर्म करने वाले हैं, यदि हममें दुर्गुण भरे हुए हैं, यदि हम पापी हैं तो भी हम आपकी शरणमें हैं, हमारी रक्षा करो, हमारा कल्याण करो।"

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

—: ॐ तत्सत् :—

संग्रहकर्ता—सरदार शाह सलुजे

सदाचार-बत्तीसी

१—मन, वचन और कर्म द्वारा किसीकी हानि न करना और न होने देना चाहिए।

२—सबका हितैषी मित्र बनकर रहना चाहिए।

३—जो कोई भी दुःखी देख पड़े, उसका दुःख दूर करने के लिए उसके प्रति सहानुभूति द्वारा द्रवित हो जाना चाहिए।

४—मैं भगवान्‌की सर्वसाधारण सत्तासे अलग स्वतन्त्रसत्तासे युक्त हूँ और अमुक सम्पति पर मेरा ही अविभक्त स्वत्व है, ऐसी अहंता और ममताकी संकीर्ण भावनासे मुक्त रहना चाहिए।

५—दुःख और सुख—दोनों एक ही जीवन पटके अन्दर ताना-बाना बनकर ओत-प्रोत हो रहे हैं, यों समझते हुए और दोनों अवस्थाओं में मनको अडोल रखते हुए दुःखकी कमी और सुखकी बढ़तीके लिए प्रयत्नशील होना चाहिये।

६—जैसे मुझसे अज्ञान आदिके वशीभूत होकर कई प्रकारके अपराध हो जाते हैं, वैसे ही दूसरों द्वारा भी होते हैं—यह जानते हुए दूसरों द्वारा जब हमारे प्रति कोई अपराध बन गया हो, तब हमें क्षमाशील होना चाहिये, आपेसे बाहर होकर व्यर्थ सटपटाना नहीं चाहिए।

७—अपना कर्तव्य पूरा करते चले जाना चाहिये और फिर उसके फल-स्वरूप मिलने वाले सुख अथवा दुःखके प्रति वेपरवाह रहते हुए अभङ्ग सन्तोष-वृतिको धारण किये रहना चाहिए।

८—निरन्तर कर्म करते रहना ही वास्तविक जीवन है, यों समझते हुए कुशलता पूर्वक कर्मात्मक जीवन-योगमें लगा रहना चाहिए।

९—सर्वत्र पाये जाने वाले कलह और अशान्तिके मूलमें व्यक्तिगत उच्छृङ्खलता रहती है, यों समझते हुए अपने जीवनमें संयम और मर्यादाको अधिक-से-अधिक मात्रामें प्रतिष्ठित करना चाहिए, अर्थात् अपनी आवश्यकताओं का यथासम्भव संकोच करते रहना चाहिए।

१०—प्रत्येक परिस्थितिका पर्यालोचन करते हुए जो अपना धर्म अर्थात् कर्तव्य सुनिश्चितरूपसे प्रतीत हो, उस पर दृढ़ रहना चाहिए और संशयसे विक्षिप्त होकर लड़खड़ाना नहीं चाहिए।

११—हर्ष, अभिमान और अहंकार के मदसे मुक्त रहना चाहिए।

१२—अमर्ष अर्थात् असहिष्णुतासे मुक्त रहना चाहिए।

१३—न स्वयं किसीसे डरना और न किसीको डराना ही चाहिए।

१४—प्रत्येक परिवर्तनशील परिस्थितिके अनुसार बरतते बरताते हुए उद्वेग अर्थात् घबराहटसे मुक्त रहना चाहिए।

१५—अपने कार्य अपने हाथसे करनेमें ही आत्मगौरव समझते हुए, अपेक्षावृत्तिसे मुक्त आत्मवश जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास करते रहना चाहिए।

१६—मन, वचन और कर्म अर्थात् लोक व्यवहारमें शुद्ध पवित्र रहना चाहिए।

१७—अभ्यास और बुद्धिके समुचित मेल के द्वारा अपनी दक्षता अर्थात् कर्मकुशलता और कर्मपरायणता बढ़ाते रहना चाहिए।

१८—कर्म कर चुकने पर उसके फलके प्रति उदासीन भाव अर्थात् बेपरवाहीको धारण करना चाहिए और प्रस्तुत दूसरे कर्तव्यके प्रति अपना सारा मनोयोग देना चाहिए।

१९—प्रतिकूल फलकी प्राप्ति होनेपर व्यथित न होकर चित्तकी शान्ति बनाये रखनी चाहिए।

२०—अपने द्वारा किये जानेवाले प्रत्येक कमको विश्वकर्मका एक खण्ड मात्र समझते हुए, जब वह हो चुके तो उसपरसे अपना सारा अधिकार अर्थात् स्वत्वका भाव हटाकर उसे भगवदर्पित अर्थात् विश्वकर्ममें ही लीन कर देना चाहिए।

२१—हर्ष अर्थात् विशेष रूपसे अनुकूल परिस्थितिकी प्राप्तिके लिए मानसिक भटकका त्याग कर देना चाहिए।

२२—द्वेष अर्थात् विशेषरूपसे प्रतिकूल परिस्थितिके निवारणके लिये मानसिक आतुरताका त्याग कर देना चाहिए।

२३—बीती हुई प्रतिकूल बातोंका स्मरण करके शोक करना छोड़ देना चाहिए।

२४—आगे आनेवाली अनुकूल बातोंकी पहलेसे आकांक्षा करना अर्थात् मनमोदक पकाना छोड़ देना चाहिए।

२५—अनुकूल फलका उत्पादक होनेसे कोई शुभ हो सकेगा और प्रतिकूल फलका उत्पादक होनेसे कोई कर्म अशुभ हो सकेगा—ऐसा भेद भाव मनमें न लाकर, देश और काल के अनुसार जो भी कर्म कर्तव्यके रूपमें उपस्थित हो उसे करते जाना चाहिए। अर्थात् किसी भी कर्मको मीठा या कडुवा न समझना चाहिए।

२६—शत्रुके प्रति और मित्रके प्रति यथायोग्य व्यवहार करते हुए अपनी मानसिक समताको बनाये रखना चाहिए।

२७—मान और अपमानकी अर्थात् अनुकूल और प्रतिकूलकी प्राप्ति होने पर अपनी मानसिक समताको बनाये रखना चाहिए।

२८—सर्दी और गर्मीमें एवं सुख और दुःखमें अपनी मानसिक समताको बनाये रखना चाहिए।

२९—असङ्ग रहना अर्थात् क्षण-क्षणमें परिवर्तनशील परिस्थितियोंकी किसी प्रकारकी भी स्थिर छापको मनपर नहीं पड़ने देना चाहिए।

३०—कोई निन्दा करे अथवा कोई स्तुति करे, इसकी चिन्ता कदापि न करते हुए अपने अन्दरकी तुष्टिमात्रका ध्यान रखते हुए अपने जीवन-योगको निबाहते रहना चाहिए।

३१—मौन अर्थात् वाणीका संयम ठीक रखते हुए आवश्यकता मात्रकी पूर्तिके लिए उसका उचित प्रयोग करना चाहिए।

३२—प्रतिक्षण हो रहे उत्पादन और विनाशको देखते हुए अनिकेत-भावको धारण किये रहना अर्थात् सांसारिक अस्थिरताके साथ ही अपनी सांसारिक परिस्थितिको भी स्वभावतः अस्थिर ही समझना, अस्वाभाविक स्थिरताके मोहसे अपने आपको मुक्त रखना चाहिये।

———

भगवद्गीता प्रश्नोत्तरी

श्री वेदान्तीजी

अर्जुन का प्रश्न—"हे केशव ! मैंने आपके उपदेशसे जाना कि अन्तकरण शुद्धिके लिये कर्मयोग आवश्यक है और मोक्षके लिये ज्ञान-योग आवश्यक है। अब कृपा करके यह बतलाइये कि मैं कर्मयोगका अधिकारी हूं या ज्ञानयोगका क्योंकि एक साथ दोनोंका अनु-ष्ठान असम्भव है। भाव यह है कि कर्त्ताका ही कर्त्तव्य होता है, अकर्ताका कोई कर्त्तव्य नहीं, वह तो असंग निर्विकार होता है। ज्ञान-योगी अपनी आत्माको अकर्ता जान लेता है। अतः उसका कोई कर्तव्य नहीं। परन्तु कर्म-योगी अपनी आत्माको अकर्त्ता नहीं जानता, वह सात्विक कर्ता होता है। इस कारण कर्म-योग और सांख्ययोगमें समसमुच्चय नहीं क्रम-समुच्चय है। चूँकि आप सर्वज्ञ परमेश्वर हैं अतः मुझे दोनोंमेंसे एकका उपदेश करें।"

भगवान्‌का उत्तर :—"हे अर्जुन उपदेश देश, काल और परिस्थितिके अनुसार करना चाहिये। चूँकि तुम दोनों सेनाओंके बीच युद्धस्थल में अन्यायके पक्षपाती युद्धकी इच्छावाले राजाओं के सम्मुख खड़े हो अतः तुम्हारे लिये प्रत्येक दशामें कर्मयोगका आचरण करना ही आवश्यक है। यदि तुम्हारा अन्तःकरण अशुद्ध है तो सुख-दुख, हार, जीतको समान समझकर युद्ध रूप अपना कर्त्तव्य पालन करनेसे तुम्हारा अन्तः-करण शुद्ध होगा। यदि अन्तःकरण शुद्ध होने से मेरे उपदेश द्वारा तुमको ज्ञान हो जाय तो भी लोक-संग्रहके लिये युद्ध करना चाहिये क्योंकि जैसा श्रेष्ठ पुरुष आचरण करते हैं उनके पीछे चलनेवाले इतर लोग भी वैसा आचरण करते हैं। यदि तुम अपना क्षात्र धर्म पालन करोगे तो क्षत्रियोंकी मृत्यु होने पर उनकी स्त्रियाँ भी अपना धर्म पालन करेंगी, अर्थात् सती हो जायेंगी फिर उनकी सन्तान वर्णसंकर होंगी ऐसा सन्देह करके शोक क्यों कर रहे हो। यदि तुम युद्ध रूप क्षात्र धर्मका त्याग कर दोगे तो इतर लोग भी धर्मका त्याग कर देंगे। अतः तुमको निष्कर्त्तव्य होने पर भी कर्मयोगका त्याग नहीं करना चाहिये। अतः इस समय क्षात्र धर्मका पालन करना तुम्हारे लिये हर पहलूसे श्रेष्ठ है।

अर्जुनका प्रश्न—"ज्ञानयोगी और कर्म-योगीकी क्या मान्यता होनी चाहिये।

भगवानका उत्तर—"जैसे ठूँठकी छाया घटने-बढ़नेसे ठूँठ नहीं घटता-बढ़ता एकरस अचल रहता है, उसी प्रकार शरीर, मन इंद्रियों

की समस्त क्रियायें होते रहने पर भी आत्मा कूटवत निष्क्रिय अचल निर्विकार रहता है। मेरे परमार्थ रूप शुद्ध सच्चिदानन्द घन आत्मा में कभी कोई क्रिया नहीं हुई न हो रही है और न होगी, भ्रममात्र स्वप्नवत अविद्या जनित इन्द्रियाँ स्वप्नवत विषयोंमें व्रत रही हैं। ऐसी ज्ञानीकी मान्यता होनी चाहिये। गीता अ० ५-श्लो० ८,९। जैसे मुनीम, मैनेजर, माली तथा उत्तम पतिव्रता स्त्री अपने मालिककी आज्ञासे मालिक का काम मालिकके लिये किया करते हैं उसी प्रकार परमात्माका सेवक बनकर ईश्वरार्थ निष्काम भावसे फलकाङ्क्षा रहित होकर कर्मयोगीको धैर्य और उत्साहपूर्वक सिद्धि असिद्धिमें हर्ष-शोक से रहित होकर कर्त्तव्यका पालन करते रहना चाहिये, फलकी किंचित मात्र चिन्ता नहीं करना चाहिये। क्योंकि-फल देना भगवानके अधिकारमें है तथा जो भी भगवान फल देते हैं वह हमारे कल्याणके लिये ही देते हैं। ऐसी मान्यता कर्मयोगीकी होनी चाहिये।"

अर्जुनका प्रश्न—"हे गोविन्द! जब ज्ञान योगी आत्माको निष्क्रिय जानता है तो ईश्वर फलदाता कैसे हो सकता है।"

भगवानका उत्तर—"जैसे स्वप्नकी प्रजा अपनेको कर्ता मानती है परन्तु वह सब निद्रा का खेल है। स्वप्नका अधिष्ठान साक्षी न कर्म फलदाता है न कर्मोंको करता कराता है, केवल निर्विकार निर्विकल्प निष्क्रिय रूपसे सदा एक-रस रहता है। उसी प्रकार हे अर्जुन! ईश्वरका लक्ष्यार्थ मैं सच्चिदानन्द व्यापक वासुदेव कुछ भी करता कराता नहीं। जैसे मेघा-काशका लक्ष्यार्थ महाकाश असंग व्यापक है। और वृष्टि करना आदि क्रियाओंका कर्ता नहीं उसी प्रकार ईश्वरका लक्ष्यार्थ मैं सच्चिदानन्द ब्रह्म हूँ जिसमें सर्व क्रियाओंका अत्यन्ताभाव है। जैसे वृष्टिका कारण मेघ और स्वप्नका कारण निद्रा है उसी प्रकार कर्म करना, कर्म कराना तथा कर्म फल देना आदि प्रपंचका कारण माया है। सर्वात्मा मुझ वासुदेवमें जलमें मक्खनकी भाँति समस्त क्रियाओंका अत्यन्ताभाव है। अतः सारा खेल मेरी मायाका समझो और अपनी आत्मासे अभिन्न मुझ वासुदेवको निष्क्रिय असंग व्यापक जानों। गीता अ० ५ श्लोक १४

———

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥श्वेताश्वतरोपनिषद्॥

यह आत्मा न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है किन्तु जिस जिस शरीरको धारण करता है उसीके साथ जुड़ जाता है।

सुख-शान्ति प्राप्त करनेके साधन

लेखक—श्री जयकान्त झा, वाराणसी,

(१) दूसरेका अहित भले ही हो पर हमारा भला होना चाहिए, हमें सदा सुख मिलना चाहिए। यह भावना हमारे दुःखका कारण है। यह एक नित्य सनातन नियम मान लेना चाहिये कि जिसकी ऐसी भावना है उसका भला होनेका ही नहीं है, उसके लिए सुख-शान्ति बहुत दूरकी चीज है। भले ही पूर्व अर्जित किसी शुभ कर्मके फलोन्मुख प्रारब्धवश वह यहाँ जगत्‌की दृष्टिमें ऊपरसे सुखमयी परिस्थितियोंसे घिरा दीख पड़े, पर कहीं कोई उसके मनमें प्रवेश करके देखे तो पता चलेगा कि उसके मनमें सुखकी छाया भी नहीं है। यह सारा विश्व एक ही प्रभुका शरीर है। हम सभी उस विराट शरीरके अंश हैं, परस्पर हम सभी जुड़े हुए हैं, सबके हितोंमें हमारा हित, सबके सुखमें हमारा सुख समाया हुआ है। ऐसी भावना होने पर ही हमें सच्चे सुख एवं शान्तिकी प्राप्ति होगी।

(२) हमें इतने प्रकारके भय घेरे रहते हैं कि जिनकी गणना सम्भव नहीं। जो कुछ हमारे पास प्रिय वस्तुएँ वर्तमान हैं उनके वियोगका तथा जिन अभिलषित वस्तुओंके लिए हम प्रयास करते रहते हैं उनके न मिलने का भय, इस प्रकारके अगणित भय हमें सदैव घेरे रहते हैं। पर इन सभी भयोंका कारण हमारी मूर्खता ही है। क्या यह सम्भव है कि परम सुहृद प्रभु हमारी आवश्यक वस्तु हमें न दें? जिन प्रभुसे समस्त विश्वमें भिन्न भावका संचार होता है, जो समस्त प्रेम भावनाओंके उद्‌गम हैं, जो सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, जो हमारे मनमें होनेवाले प्रत्येक सूक्ष्मतम स्पन्दनसे भी नित्य परिचित रहते है, वे कभी भला ऐसा कर सकते हैं? निरन्तर देते रहना प्रभुका स्वभाव है, हमारे लिए नित्य नव-आनन्दका सृजन करना ही उनका काम है। बिना हमसे कुछ याचना किये, हमारे लिए नित्य निरन्तर इतनी सुन्दर व्यवस्था करने वाला, हमारी रक्षा करने वाला, हमारा अकारण स्नेही मित्र क्या ऐसा कोई दूसरा मिलेगा? पर हमें ऐसी प्रतीति नहीं होती, हम डरते रहते हैं और डर-डरकर दुखी होते रहते हैं। हम प्रभुकी ओर नजर उठाकर देखते तक नहीं, हमें उनकी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होती। यदि हम उनकी ओर देखने लग जायँ तो प्रत्येक भयके स्थानमें प्रभुका हँसता हुआ मुख हमें दीखने लग जाय और हमारे सभी भय और दुखोंका अन्त हो जाय।

(३) सुख-शान्तिके मार्गमें सबसे बड़ा बाधक हमारा अहं भाव है। हमें निमित्त बना-

कर यदि कोई सुन्दर घटना घटित होती है तो उसका सारा श्रेय हम अकेले ही ले लेना चाहते हैं। ऐसे समय अपनेको सामने रखनेमें हम तनिक भी लज्जाका अनुभव नहीं करते। विचार करनेपर ज्ञात होगा कि जिन इन्द्रियोंकी सहायतासे यह कार्य सम्पन्न हुआ है, जिस मनके विचारोंने उसे सफल बनाया है उन इन्द्रियों एवं मनमें कहाँसे शक्ति आयी है? प्रभुकी शक्ति ही तो इन्द्रियोंमें व्यक्त होती रही है, उनकी शक्तिने ही तो वैसे सुन्दर विचार मनमें उद्बुद्ध किये थे। फिर हमारा क्या है जो हम अहंकार कर रहे हैं—उस कार्यका श्रेय ले रहे हैं। यहाँ सब कुछ सर्वथा प्रभुकी शक्तिसे ही तो सम्पन्न हो रहा है, पर हम अहंकारसे विमूढ़ होकर अपनेको उन सबका कर्ता मान बैठते हैं और इसी अहंकार रूपी मलिन यन्त्रके द्वारा हम प्रभुकी पवित्रतम शक्तिका दुरुपयोग करते हुए सच्चे सुखसे वंचित रह जाते हैं। अतः हमें सर्वथा अहंकारसे परिशुद्ध होकर प्रभुके पाद-पद्मोंमें एक मात्र उन्हींका आश्रय लेकर लिपट जाना चाहिए। और हर अवस्थामें प्रभुकी संचारितकी हुई शक्ति को निरखते हुए उत्फुल्ल होते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे प्रभुके मंगलमय विधानकी झांकी हमें सदैव मिलती रहेगी और हम प्रतिक्षण सुख-शान्तिके समुद्रमें गोते खाते हुए अपार हर्ष एवं प्रफुल्लताका अनुभव करते रहेंगे।

(४) भगवानके मंगलमय दानको अस्वीकार करनेकी प्रवृत्ति भी हमारे सुख-शान्तिके मार्गमें कम बाधक नहीं है। फलरूपमें हमें यहाँ जो कुछ भी प्राप्त हो रहा है उन सभीमें मंगलमय प्रभुका मंगलमय विधान काम करता है। प्रभु हमें जो कुछ भी देते हैं उससे हमारा उत्थान होना निश्चित है। प्रभुका प्रत्येक विधान हमारे जीवनको निम्नस्तरसे उठाकर उच्च स्तरकी ओर ले जानेके लिए ही बनता है, किन्तु हम उसे स्वीकार करना नहीं चाहते। आज जो अपनेको आस्तिक कहते हैं वे भी अपने मनके प्रतिकूल किसी भी विधानको स्वीकार करना नहीं चाहते। मनचाहा होने पर तो वे निश्चय ही बड़ी आसानीसे कह देंगे कि "प्रभुकी कृपा है।" पर मनके विरुद्ध होनेपर वे उदास हो जायँगे। यह प्रभु-कृपाका वास्तविक दर्शन नहीं है। वास्तविक दर्शन तो वह है, जब कभी भी हमारे लिए प्रतिकूल परिस्थिति रहें ही नहीं। प्रभुके विधानसे हमें जो कुछ भी मिले उसीमें हमें अनुकूलताका बोध हो। चाहे हम रोकर स्वीकार करें या हँसकर प्रभुका विधान तो हमपर लागू होकर रहेगा। जैसे अबोध शिशुके रोनेकी परवाह न करके माता उसे स्नान कराती है, शरीर पर जमे मैलको मल-मलकर धोती है, वैसे ही दयामय प्रभु हमारे रोने-चिल्लानेकी परवाह न करके हमें दुःख, विपत्ति, अपमान, निन्दा आदि विधानोंसे परिशुद्ध करते रहते हैं। अतः प्रभु रूप अनन्त दयामयी जननीके हाथोंमें अपनेको सौंपकर हमें निश्चिन्त हो जाना चाहिए। तभी हमारा कल्याण होगा।

—:०:—

मायाका आवरण

लेखक—स्वामी हरिहरदास

श्री साधुवेला आश्रम, बनारस।

किसी समय नारद मुनि पुण्य-भू भारतका भ्रमण करते हुए एक सत्संगी धार्मिक नगरमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने एक अच्छा विशाल सत्संग भवन देखा। जिसमें कई सहस्रोंकी संख्यामें भावुक नर-नारी सत्संग-भजन व कीर्तन कर रहे थे। भगवान्से मिलनेके लिए व्याकुल हो वे सब अश्रु बहा रहे थे। भगवान्की प्रार्थना करते हुए वे कह रहे थे—"हाय! भगवान् बड़े निष्ठुर हैं वे हमें दर्शन क्यों नहीं दे रहे हैं? कब उनकी हमपर कृपा होगी, हे प्रभो! कृपा निधान! अब हमें ज्यादा मत तरसाओ, शीघ्र आओ और हमारे विरह-संतप्त हृदयको अपने मिलन-अमृतसे सींचकर शीतल करो। भगवान्! दीनबन्धो! हमें अब आपके सिवा कुछ भी सुहाता नहीं। नाथ! अब हमपर शीघ्र कृपा करो, और अपने व्यथित भक्तोंके आतुर नयनोंको पावन दर्शन देकर सुखी करो।"

इस प्रकार नारद मुनिने वहाँ भक्तोंको भगवान्के लिए दर्शनकी आकांक्षासे तड़पते हुए देखकर विचार किया कि वास्तवमें भगवान् बड़े कठोर हैं। ये भक्त लोग दर्शनके लिए कितने छटपटा रहे हैं तथापि भगवान् इन्हें दर्शन नहीं दे रहे हैं। इसलिए शास्त्रोंमें भगवान्के लिए 'करुणासागर' 'दयानिधि' 'दीनदयाल' इत्यादि जो विशेषण लिखे गये हैं, वे सब व्यर्थकी चापलूसीके लिये झूठे ही मालुम पड़ रहे हैं। ऐसा विचारकर नारदजी अपनी योग शक्तिके द्वारा तुरन्त ही दिव्य धाम बैकुण्ठ में पहुँच गये और भगवान्से मिलकर कहने लगे—"भगवान् आप शीघ्र ही उस नगरमें चलें और अपने प्रेमी भक्तोंको दर्शन देकर कृतार्थ करें। नहीं तो मैं आपके करुणासागर आदि विशेषणोंके ऊपर हड़ताल फेर दूँगा।"

भगवान्ने कहा—'नारद! ऐसा मत करो, वहाँ मैं शीघ्र ही चलता हूँ, सब भक्तोंको दर्शन देनेके लिए तैयार हूँ।' ऐसा कहकर भगवान् तुरन्त ही नारदजीके साथ चल पड़े। उस नगरसे पाँच कोसकी दूरीपर रमणीय वट-वृक्षकी छायामें एकान्त देखकर भगवान् बैठ गये और नारदजीसे कहने लगे—"अब तुम शीघ्र वहाँ जाओ और सब भक्तोंको यहाँ बुला ले आओ। यहाँ आनेपर उन सबको मैं दर्शन दे दूँगा। हम करोड़ों कोसोंसे चलकर यहाँ आये हैं। अतः उन भक्तोंको भी अपने नगरसे कुछ चलना तो चाहिये न?"

भगवान्की बात सुनकर नारद बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—'भवगन्! आप यहीं विराजे रहें मैं अभी वहाँ जाता हूँ और आपके श्री चरणोंमें कई हजार भक्तोंकी भीड़ लाकर खड़ी कर देता हूँ।" ऐसा कहकर नारद चल पड़े, और आये उस सत्संग भवनमें जहाँ कई सहस्र नर-नारी बैठकर गीता-प्रवचन सुन रहे थे। प्रवचनके बाद खड़े होकर नारदजीने कहा—'भावुक भक्तों! विश्वास रक्खों मैं नारद हूँ, आप सबकी श्रद्धा-भक्ति एवं उत्कट अभिलाषा देखकर मैं करुणा सागर भगवान्को बैकुण्ठसे यहाँ तुम्हारे समीप ले आया हूँ। सिर्फ पाँच कोस ही चलना पड़ेगा। यहाँसे पाँच कोसकी दूरीपर भगवान् विराजमान हैं। अतः वहाँ पहुँचकर आप सबके सब भगवान्के पावन दर्शन करें। एवं अपने मानव जीवनको धन्य एवं सफल बनायें, इसमें आपलोग एक क्षणका भी विलम्ब मत करें और शीघ्र ही मेरे साथ चल पड़ें। बोलो—'बैकुण्ठनाथ भगवान् श्री नारायणजीकी जय।'

नारदजीकी बात सुनकर कुछ लोग आपस में हँसकर कहने लगे—"आजकल संसारमें ढोंग बहुत फैल गया है। ऐरे-गैरे नत्थू खैरे लोग साधुका वेश बनाकर भगवान्का दर्शन करानेके ठेकेदार बन गए हैं। यह बेकार ढोंगी आदमी" नारदजीके सामने इशारा करके—"कहता है कि पाँच कोस हमारे साथ चलो। इसके समान हमलोग भी बेकार और निकम्मे थोड़े ही हैं कि घरका काम-काज छोड़कर बिना बिचारे यूँ ही चल पड़ें। अपना तो बाजारमें पहुँचनेका समय हो गया है। मालूम होता है कि साधुने झूठ-मूठ कोरी गप्प गढ़कर कुछ ऐं[illegible] का उपाय रच रखा है।" इसकी बात सुन[illegible] दूसरा व्यक्ति बोला—"अरे भाई! इस पा[illegible] प्रधान कलियुगमें भगवान्के दर्शन कहीं मार्[illegible] थोड़े ही पड़े हैं?"

इस प्रकार आधेसे भी ज्यादा लोग नारद जीके वचनोंमें अश्रद्धा कर अपने-अपने घर[illegible] तरफ जाने लगे। तथापि नारदजी चिल्लाक[र] कहते ही रहे—"अरे भाइयो! तुमलोग बड़ी गलती कर रहे हो ऐसा सुवर्ण अवसर बार-बा[र] तुम्हें नहीं मिलेगा। अतः तुम सब मेरी बातों पर अविश्वास मत करो। विश्वास कर मेरे साथ चलो और भगवान्के दर्शनका अलभ्य लाभ पाओ।" परन्तु नारदकी इस चिल्लाहटको सुनी अनसुनी करके उपेक्षाकी भावना रख वे अपने-अपने स्थानको चले गये। तो भी ७-८ सौ व्यक्ति नारदजीके साथ चलनेको तैयार हो गये। उन्होंने सोचा—यह साधु तेजस्वी दीख रहा है, सम्भव है इसका वचन सच्चा हो जाय। और यदि झूठा भी हुआ तो क्या? भगवद्दर्शन नहीं हो पाया तो भी पाँच कोस चलनेसे क्या हो जाता है? देखें यह भी क्या तमाशा है।

भक्तोंका इतना समुदाय साथ लेकर नारद जी भगवन्नाम संकीर्तन कराते हुए नगरके बाहर निकले। नारदजीने सन्तोष किया कि चलो इतना ही सही। इतनोंको ही यदि मैं भगवान्का दर्शन करा दूँगा तो भी बहुत है। भक्तोंके एक कोस पहुँचनेपर ही भगवान्ने अपनी

योगमायाको आदेश दिया—"जा तू जल्दी वहाँ उनकी परीक्षा ले। वे मुझको ही चाहते हैं कि और भी किसी दुनियाँकी चीजोंको। क्योंकि निःस्पृह निर्मम एवं निरहंकारी भक्त ही मेरा दर्शन कर सकता है। स्पृहा, ममता अभिमान आदि दोषों वाले व्यक्ति मेरा दर्शन नहीं कर सकते। इसलिए वहाँ जाकर इनके मार्गमें कुछ प्रतिरोधक आवरण डाल दे।" भगवान्का आदेश पाकर योगमायाने तुरन्त ही एक कोसकी अवधिमें वहाँकी जमीन फाड़ दी और उसमें ताँबेके असंख्य नये सिक्के भर दिये मानो कोई टकसाल जमीनसे प्रकट हो गई हो। उसे देखकर 'हरे राम हरे राम' बोलने वाले भक्तोंने बड़े आश्चर्यके साथ कहा—"हरे राम हरे राम, यह क्या ?" और देखनेके साथ ही सैकड़ों लोग उस गड्ढेमें उतर पड़े और अपनी-अपनी धोतीको खोलकर दोनों हाथोंसे सिक्कों की गठरियाँ बाँधने लगे। ऐसा देखकर नारदजी कहने लगे—"हैं! यह क्या कर रहे हो ? छोड़ो इन्हें, इनमें हाथ मत लगाओ। यह योग-मायाका झूठा प्रदर्शन है, इसमें मत ललचाओ। नहीं तो भगवद्दर्शनसे वंचित रहना पड़ेगा। अतः निकलो यहाँसे, चलो मेरे साथ।" तथापि वे लोग मायाके प्रभावसे जैसे नारदजीकी बातों को सुन ही नहीं रहे थे। और चोरोंकी भाँति गठरियाँ लादे अपने घरकी ओर चल पड़े।

कोई वाचाल व्यक्ति इन सिक्कोंकी गठरी बाँधता हुआ नारदजीसे कहने लगा—"बाबा, हम बहुत ही गरीब हैं, बड़ी मुश्किलसे परिवारका पेट पाल रहे हैं, पैसोंकी इतनी बड़ी गठरी हमें कभी नहीं मिली। लड़कीका ब्याह करना है, टूटा-फूटा घर नया बनाना है, ऐसे बीसों काम पड़े हैं परन्तु पैसे बिना क्या हो सकता है ? इनके लिये हम बहुत ही चिन्तामें पड़े हुए थे। मालूम होता है कि भगवान्ने हमारी चिन्ताओंको दूर करनेके लिये ही यह विपुल खजाना खोल दिया है। इसलिए बाबा भगवान्का दर्शन तो पीछे भी हो जायगा परन्तु इस मायाका पुनः दर्शन होना बड़ा कठिन है। तुम तो फक्कड़ बाबा ठहरे तुम्हें घर गृहस्थीकी जंजालका क्या पता ? जो इसके चक्करमें फँसा हो वही इसकी मुसीबतोंको जान सकता है। इसलिये महाराज! जो गठरी बाँधना चाहे उसे कृपाकर बाँधने दो किसीको मना मत करो। एक बार क्या ? कई बार यहाँ आकर हम गठरियाँ बाँधकर घरमें पहुँचा देंगे। इनसे हमारा दारिद्र्य सदाके लिए दूर हो जायगा।"

नारदजी ऐसा दृश्य देखकर और उनकी विचित्र बातें सुनकर बहुत निराश हुए तथापि धैर्यके साथ कुछ लोगोंको समझाने लगे। इस समुदायमेंसे करीब तीन-चार सौ लोग नारदजीके उपदेशको मानकर उनके साथ चलने लगे। दूसरा कोस समाप्त होनेपर योगमायाने चाँदीके सिक्कोंके ढेर लगा दिये। अब जिन्होंने ताँबेके सिक्केकी उपेक्षा की थी उनसे रजत द्रव्य देख कर नहीं रहा गया। वे भी उनकी गठरियाँ बाँधने लग गये। नारदजी मना करते रहे, समझाते रहे परन्तु इनकी कौन सुनता है ? तो भी कुछ माईके लाल ऐसे सैकड़ोंकी तादादमें

थे जो नारदजीके उपदेशोंके अनुसार आगे चलनेके लिये तैयार हो गये।

जब वे तीसरे कोस पर पहुँचे तब वहाँ योगमायाने स्वर्णके रमणीय घिन्नियों की एक पूरी खान ही विशाल टकसाल जैसी प्रकट कर दी। उसका दर्शन कर वे लोग इतने चकाचौंध एवं लालायित हो गये कि गोविन्दाय नमोनमः भगवान्‌के नाम एवं उनके दर्शन दोनोंको ही भूल गये। जैसे प्यासे जन मधुर जलको देखकर उसपर टूट पड़ते हैं, वैसे ही वे लोग भी दौड़ कर उसके ऊपर टूट पड़े। ये सोचने लगे क्या पता ? वहाँ पहुँचने पर भगवान् मिलें या न मिलें। परन्तु इन अनायास मिले हुए सुवर्ण के नगद-नारायणको छोड़ देना परले सिरेकी वज्र मूर्खता ही मानी जायगी। ऐसा सोचकर वे लोग भी गठरियाँ बाँधने लगे।

इस प्रकार योग मायाने नारदजीके समग्र प्रोग्राम पर पानी फेर दिया। नारदजीने तो श्री भगवान् से कई सहस्र भक्तोंकी भीड़ उपस्थित करनेके लिए कहा था। किन्तु योग मायाने कुछ गिनतीके लोगोंको छोड़कर सबको ही अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। ऐसा देखकर नारदजी योग माया पर और उन लोगोंपर बहुत झुँझ-लाये "अरे मूर्खों ! यह भगवान्‌की योग माया का मिथ्या प्रदर्शन है यह खजाना मृग-तृष्णाके जलकी भाँति है यह केवल दर्शन मात्रकी ही संपदा हैं घरमें पहुँचने पर इन गठरियोंसे धूलकी ढेरी मिलेगी। देखना तुम्हारी वही गति होगी न मिली माया न मिले राम न इधरके रहे न उधरके रहे। इसलिए इन्हें छोड़ मेरे साथ चलो। मोहमें मत फँसो।"

परन्तु उनमेंसे ३०–४० व्यक्ति ही नारद जीकी बात मानकर आगे बढ़े और शेप लोग सुवर्णकी प्रत्यक्ष आराधनामें व्यस्त हो गये। जब वे आगे चतुथ कोसपर पहुँचे तब वहाँ योगमायाने हीरे-माणिक-नीलम-मुक्ता आदि दिव्य जवाहरातके खजाने खोल दिए। प्रकाशमान सुन्दर-मन मोहक रत्नोंको देखकर जिन्होंने रजत एवं कंचनके सिक्कोंका भी मोह छोड़ दिया था वे भी मंत्र-मुग्धकी भाँति उनपर लट्टू हो गये और शीघ्र ही दौड़कर उन्हें उठा उठाकर गठरियोंमें छिपाने लगे। ऐसा देखकर नारदजी शान्तिसे समझाते हुए कहने लगे–– "भाइयो ! तुम लोग अब अन्तिम सीमापर पहुँच गये हो एक कोस ही सिर्फ चलना बाकी रह गया है। वहाँ पहुँचने पर तुम्हें अनन्त सौन्दर्य लावण्य, माधुर्य-निधि भगवान् श्रीपति नारायण के पुनीत एवं भव्य दर्शन प्राप्त होंगे। जिनके सत्य एवं दिव्य दर्शनके समक्ष इन रत्नोंका दर्शन मिथ्या है। भगवानका दर्शन तुम्हें शाश्वत विशुद्ध आनन्द प्रदान करेगा और इन रत्नोंका दर्शन प्रारम्भके कुछ क्षणोंमें सुखद होते हुए भी अन्तमें महा दुखप्रद ही सिद्ध होगा। जैसे जादूगर-प्रदर्शित-वस्तुओंका दर्शन स्थायी नहीं, किन्तु क्षणभंगुर होता है वैसे ही इस योग माया रूपी जादूगरनीका भी यह रत्न प्रदर्शन स्थायी नहीं है। यह जादूगरनी तुम्हारे भगवद्-दर्शनमें आवरण डाल रही है इसलिए आप लोग सावधान हो जाँय अतः इसके मिथ्या

मोहका परित्याग करें और शान्तिसे आगे बढ़ें। याद करें प्रथम तुम लोग क्या चाहते थे और क्या कहते थे ? इस योग-मायाकी चकाचौंधसे अपने लक्ष्यको एक क्षणमें ही भूल गये क्या ? अतः आगे-पीछेका विचार करो और अपने उस महान उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिए इससे मुखमोड़ कर तत्पर हो जाओ।"

नारदजी द्वारा ऐसा समझाने पर दो या तीन ही व्यक्ति जो विवेक, विचारशील, बातके धनी एवं भगवानके खरे भक्त थे आगे चलने के लिए प्रस्तुत हुए। बाकीके सभी लोग मायाके इस चकाचौंधमें ही फँस गये। नारदजी इन दो-तीनको ही साथ लेकर पंचम कोसकी समाप्ति होने पर भगवान्के श्री चरणोंमें पहुँच गये। इन दो या तीनोंने ही भगवानके पावन दर्शन कर अपने जीवनको सफल एवं धन्य बनाया।

श्री भगवानने नारदसे हँसकर पूछा—"क्यों नारद कहाँ गई वह कई सहस्र भक्तोंकी भीड़ ?" नारदने खीजकर कहा—"गई आपके योगमायाके झूठे भड़कीले एवं छली गड्ढोंमें। जब कि आप सब कुछ जानते हैं तब फिर क्या पूछते हैं ? आपकी योगमायाका ही रचा हुआ वह फन्दा था जिसने हमारे भक्तोंकी भीड़का खातमा कर दिया।" श्री भगवानने पुनः कुतूहल से कहा—"क्यों नारद ! अब तू क्या मेरे उन विशेषणों पर हड़ताल करेगा ?" नारदजीने कुछ पश्चात्तापके स्वरमें आँखोंको झुकाकर सलज्ज कहा कि—'प्रभो ! आपकी अद्भुत-लीलाको कौन जान सकता है, मुझे वास्तविकताका पूरा पता नहीं था इसलिए मैंने उस समय करुणाके उत्कट वेगमें बहकर ऐसा बक दिया था। आप सब प्रकारसे समर्थ हैं अतः इस अभिमानीको क्षमा करनेकी कृपा करें।"

भगवान श्री कृष्णने गीतामें कहा है—'यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः।'

अर्थात् योगमायाके आवरणोंको हटानेके लिए प्रयत्न करनेवाले योगियोंमेंसे कोई एक ही महाभाग पुरुष आवरण हटा कर मुझे तत्वतः जान पाता है।

—०—

विद्या

आत्माभासस्य जीवस्य संसारो नात्मवस्तुनः।
इति बोधोभवेद् विद्या लभ्यतेऽसौ विचारणात् ॥

यह संसार आत्माभास (चिदाभास) जीवका है, आत्मवस्तुका संसार नहीं है ऐसा ज्ञान विद्या कहलाता है। यह विद्या अध्यात्म विचार करते रहनेसे कालान्तरमें प्राप्त होती है। सूखे अध्ययनसे इसकी प्राप्ति नहीं होती।
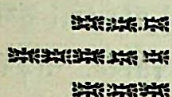
आश्रम जीवनमें फूल

लेखिका—अनुबेन

श्री अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी

श्री अरविन्दाश्रमका आदर्श है जीवनकी प्रत्येक प्रवृत्तिको अपनाकर उसे ऊँचे-से-ऊँचे स्तर पर ले जानेका प्रयास करना। इस आदर्श के अनुसार आश्रममें बागवानी भी खूब तन्मयता के साथ की जाती है। श्रीमाताजीकी प्रेरणासे सैकड़ों प्रकारके फूल उनके सौन्दर्यके प्रति अनुरागके द्योतक हैं। श्रीमाताजीके पास रहते रहते आश्रम वासियोंमें भी सुरुचि और सौन्दर्य प्रेम स्फुरित हुआ है। प्रत्येक कमरेमें प्रत्येक विभागमें सुरुचिपूर्ण सजावटके साथ-साथ भिन्न-भिन्न प्रकारके फूल और गुलदस्ते भी आपको अवश्य दिखाई देंगे। आश्रममें प्रवेश करते ही आपको स्वच्छता सुव्यवस्था और सौन्दर्यकी अनुपम त्रिवेणी दिखाई देगी।

हमारी साधारण दृष्टिमें फूल प्रकृतिकी गोदमें खेलते खिलखिलाते बच्चोंके सदृश्य हैं परन्तु माताजी ने अपनी दिव्य दृष्टिसे उनके सच्चे स्वरूपको देखा है इसीलिए उन्होंने प्रत्येक फूलका विशेष आध्यात्मिक अर्थ बताया है। उनकी दृष्टिमें फूल पौधेकी आत्मा हैं और वह आत्मा अपनी कहानी माँके सामने खोलकर सुनाते हैं। उनकी कहानी सुनकर माताजी उन्हें अर्थ देती हैं। उदाहरण स्वरूप कवियोंके प्रिय विख्यात चम्पाको ही लीजिए। उसका नाम है मनोवैज्ञानिक परिपूर्णता एक-एक पंखुड़ीको मिलाकर एक सम्पूर्ण अर्थ बना है। भगवानके प्रति समर्पण दिव्य जीवनके लिये अभीप्सा, भगवान्के प्रति श्रद्धा, सद्‌हृदयता और अटूट भक्ति इन पाँच चीजों को मिलाकर साधककी मनोवैज्ञानिक परिपूर्णता निर्मित होती है। इसी तरह शेफाली या हरश्रृङ्गारका फूल भी दिव्य जीवनके लिये अभीप्साका द्योतक है। (बटन रोज) का अर्थ है जीवनकी प्रत्येक सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रवृत्तिका समर्पण। गेंदा 'नमनीयता' का द्योतक है तथा 'फॉरगेट मी नॉट' का भाव है भगवान्की सतत स्मृति। भारतीय संस्कृतिमें जिस फूलने स्थापत्य कला तथा साहित्य में सबसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है वह 'कमल' है। 'दिव्य चेतना' का प्रतीक ऊँचा मस्तक किये अपनी गरिमा तथा रंगवैभव से दृष्टिको आकर्षित करने वाला तथा मनको लुभाने वाला 'डालिया' गौरवका प्रतीक है। शिवका प्रिय 'धतूरा' है तपस्याका द्योतक और प्रायः सभी देवोंका प्रिय 'दूर्वा' शील

का अर्थ व्यक्त करता है। न केवल फूल, पत्तियाँ भी कभी-कभी कुछ कहना चाहती हैं। विष्णुकी प्रिय तुलसी 'भक्ति' का संदेश लाती है। इसी तरह शिव पूजामें अनिवार्य बिल्व पत्र इच्छा, कामनासे रहित मन-स्थितिका सूचक है। उसी प्रकार पलाशका फूल है अति-मानसिक अनुभूतिके आरम्भका चिन्ह है। गुलाब भगवान्के प्रति प्रेम और समर्पणका प्रतीक है। जूही, मोतिया, बेला आदि अपनी सुगंधसे पवित्रताका संदेश देती हैं।

आश्रममें परिचित अपरिचित अनेक फूलों का मेला सा लगा रहता है। यहाँ तक कि जून जूलाईकी गर्मियोंमें भी जब सुकोमल फूल झुलस जाते हैं, यहाँ पर फूल अपनी बहार दिखाते नहीं थकते। हमारे देशमें आश्रमके बाहर 'ऑरकिड' जरा कम ही होते हैं। पर आश्रममें आप जहाँ तहाँ पेड़ों पर आरकिड लटकते देखेंगे। और इसका अर्थ भी कैसा अनुपम है—भगवान्के प्रति अनुराग।

इन फूलोंका आश्रम जीवनमें महत्वपूर्ण स्थान है। आश्रमवासी फूलोंकी मूक भाषामें अपनी प्रार्थना, अपने आराध्य देव तक पहुँचा पाता है। फूल अपने नीले-पीले-हरित आदि असंख्य रंगोंसे युक्त अपना वैभव लेकर हमारे जीवनमें इतने घुल-मिल गए हैं कि फूलोंके बगैर आश्रमकी कल्पना करना मुश्किल है। श्रीमाताजी भी फूलों द्वारा अपने मौन संदेश आश्रमवासियोंको देती रहती हैं। वे कहती हैं "मैं जब तुम्हें एक फूल देती हूँ तो साथमें चेतना भी देती हूँ।"

—०—

थे देवता मालवी !

श्री सरयूप्रसाद शास्त्री 'द्विजेन्द्र' साहित्यरत्न

⊙

(१)

जन्मे थे द्विज मालवीय कुल में, देदीप्यमानान्वये ।
जो सौन्दर्य उदार्य आर्यगुण में, थे श्रेष्ट मान गये ॥
दीनों के धन थे तथा स्वजन के, प्राणावलम्बी सदा ।
थे आदर्श महर्षि वे कुलपति, माने गये सर्वदा ॥

(२)

माना धर्म सदा सनातन तथा, कर्तव्य में थे सने ।
चाहा सत्य-कथा-प्रचार जनमें, व्यायाम शाला बने ॥
गोरक्षा जिनकी रही सतत ही, आदर्श सेवा सही ।
'जाये' प्राण भले परन्तु न टले, गो सेवकाई कहीं ॥

(३)

प्राज्ञों में अतिप्रज्ञ, नीति-तरणी, जो नित्य खेते रहे ।
दानी थे नृप कर्ण तुल्य जग में, सर्वस्व देते रहे ॥
होते शास्त्र विचार-मग्न जब वे, वेदान्त विज्ञान में ।
पाते मोद महा 'द्विजेन्द्र' मन में, विद्यार्थी विद्वान में ॥

(४)

विद्यागार समस्त विश्व-हित है, शोभान्विता सोख्यदा ।
उन्हीं की विमला 'शताब्दि' शुभदा, होवे यशःश्रीप्रदा ॥
ऐसा लोक प्रसिद्ध कार्य जिनका, वे सत्यध्यानी रहे ।
शोभा-सिद्धि-समेत मूर्तिमत हो, अध्यात्म ज्ञानी रहे ।

(५)

माया मोह नहीं मद न था, देखा गया देह में ।
राग द्वेष न था तथैव मन में, धोखा न था स्नेह में ॥
वे भी यद्यपि पंचभत मन के, थे देह से मानवी ।
तो भी कीर्त्ति-शरीरसे विमल थे, 'थे देवता मालवी' ॥

हरिद्वार का कुम्भपर्व

महन्त श्री प्रकाश मुनिजी महाराज, जखोरा प्रबन्धक
श्री उदासीन पञ्चायती बड़ा अखाड़ा, राजघाट, कनखल, हरिद्वार।

आज हम जिस परमाणु विज्ञानका नित्य नूतन चमत्कार देख रहे हैं, वह मूलतः भारतीय महर्षियोंकी देन है। वैशेषिक दर्शन परमाणुवाद पर ही आधृत है। इस समयका वैज्ञानिक विविध शक्ति-सम्पन्न उपकरणोंके द्वारा जिस सूक्ष्म तथ्य तक पहुँच पाता है, भारतीय महर्षिगण योगसाधनासे उस तथ्य तक पहुँचा करते थे। योगसाधना अपनी गहनता और गोप्यताके कारण लुप्तप्राय हो गई। अन्य पुष्कल व्यय-साध्य साधन हमारे पास थे नहीं, अतः साधन-सम्पन्न देश बाजी मार गये। किन्तु मौलिक सिद्धान्त वे ही हैं। जिन परमाणुओंने विरल-रूपमें संहत होकर आकाशकी रचना की, वे ही कुछ अधिक सघन होकर वायुके रूपमें आये, उससे भी अधिक सघन बन अग्नि बने, अग्निसे भी अधिक सघन होकर जल और सबसे अधिक सघनता सम्पादन कर पृथिवीका रूप धारण किया। पत्थरके रूपमें विद्यमान सघन परमाणु भी नितान्त निराविल (ठोस) नहीं, अपितु उनके बीच पर्याप्त पोल है। आत्मा व्यापक है, प्रत्येक परमाणुसे उसका संयोग है। आत्म-संयोगके कारण परमाणुओंमें सदैव क्रिया और संयोग विभागकी धारा बनी रहती है। इसीलिए प्रत्येक क्षण भूत-भौतिक जगत्में परिवर्तन होता रहता है।

उन्हीं परमाणुओंकी समष्टि रचना ब्रह्माण्ड और व्यष्टि रचना मानव पिण्ड है। पिण्ड और ब्रह्माण्डमें तादात्म्य है, इसीलिए ब्रह्माण्ड-वर्ती अनन्त ग्रह नक्षत्रादिकी सत्ता पिण्डमें भी मानी गई है। शिवसंहितामें कहा है—

देहेऽस्मिन् वर्तते मेरुः सप्तद्वीप समन्वितः।
सरितः सागराः शैलाः क्षेत्राणि क्षेत्रपालकः॥
ऋषयो मुनयः सर्वे नक्षत्राणि ग्रहास्तथा।
पुण्यतीर्थानि पीठानि वर्तन्ते पीठदेवताः॥

फलतः यह मानव पिण्ड पूर्व ब्रह्माण्डका प्रतीक है। आकर्षण-विकर्षणके रूपमें ईश्वरकी इच्छाशक्ति प्रत्येक परमाणुमें व्याप्त है। उसीसे नियन्त्रित समग्र ब्रह्माण्ड नियमितरूपसे अपनी नियत परिधिमें भ्रमण कर रहा है। सौर जगत्-की ग्रह-संघटनाका प्रभाव समष्टिसे लेकर व्यष्टि सृष्टि पर पड़ता है। समुद्रमें व्याप्त ज्वार-भाटा समुद्रके प्रत्येक जलकणको आन्दोलित कर

दिया करता है। अतः गणित ज्योतिषके साथ-साथ फलित ज्योतिषकी भी सत्यता प्रमाणित हुए बिना नहीं रहती। हाँ, ग्रह योगके सामर्थ्य, क्षेत्र और संचार आदिका यथावत् ज्ञान ज्ञानयुक्त योगियों को ही हो सकता है। इसीलिए साधारण ज्योतिषियोंका फलित अंश सर्वथा संपादित नहीं हो पाता। प्राचीन महर्षियोंकी ऋतम्भरा प्रज्ञासे प्रकाशित तत्त्व कदापि अन्यथा नहीं होते।

ग्रहोंकी गति और योगोंके आधारपर महर्षियोंने हमारे पर्व निश्चितकर उनका माहात्म्य आदि बताया है। इन्हीं पर्वोंमें प्रधान एक कुम्भ पर्व है। पर्वोंके साथ देशका भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। त्र्यम्बक (नासिक) उज्जयिनी, प्रयाग और हरिद्वार—इन चार तीर्थ स्थानोंमें लगभग १२-१२ वर्षोंके पश्चात् यह योग हुआ करता है। कर्कराशिमें बृहस्पति सूर्य और चन्द्र होनेपर त्र्यम्बक (नासिक) में; सिंह राशिमें बृहस्पतिके होनेपर उज्जयिनी में, माघ मासमें मेष राशिपर गुरु मकरराशिमें चन्द्र और सूर्य होने पर प्रयागमें और कुम्भराशिमें बृहस्पति, मेषमें सूर्य होने पर हरिद्वारमें कुम्भ पर्व मनाया जाता है।

यों तो महर्षियोंने गंगा स्नानका अनिर्वचनीय माहात्म्य प्रतिपादित किया है, विशेषतः हरिद्वार, प्रयाग और वाराणसी—तीन स्थानों में—यथा—

सर्वत्र सुलभा गंगा त्रिषुस्थानेषु दुर्लभा।
गंगा द्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे॥
सवासवा सुराः सर्वे गङ्गाद्वारं मनोरमम्।
समागत्य प्रकुर्वन्ति स्नादानादिकं मुने॥

हरिद्वारमें इस वर्ष १३ अप्रैल १९६२ ई० को कुम्भ पर्व भी है। देशके कोने-कोनेसे महात्मागण सभी सम्प्रदायोंके अखाड़े, मण्डलेश्वर, महामण्डलेश्वर और आस्तिक गृहस्थवर्ग लाखोंकी संख्यामें एकत्र होंगे। यह संसारमें सबसे बड़ा मेला है। यह मेला ४ मार्च १९६२ शिवरात्रिसे लेकर १३ अप्रैल १९६२ ई० रामनवमी तक होगा। हमारे अखाड़े (सम्प्रदाय-संचालक मुख्य समितियाँ) सम्पूर्ण भारत वर्षमें पदयात्रा करते हुए प्रायः १२ वर्षोंमें ही उक्त स्थानों पर पहुँचा करते हैं। सबके प्रवेश मुहूर्त पृथक्-पृथक् होते हैं। हमारे श्री उदासीन पंचायती बड़े अखाड़ेका प्रवेश १५ मार्च १९६२ ई० (फाल्गुन शु० १० गुरुवार) को होगा। उसी दिन प्रातः ध्वजारोहण होगा। हमारे अखाड़ेकी तीन दिन शाही (शोभा यात्रा) निकलेगी। १५ मार्च को प्रवेश शाही, ४ अप्रैल को प्रथम स्नान शाही और १३ अप्रैलको मुख्य स्नान शाही। स्नानकी सभी तिथियाँ हैं—४ मार्च शिवरात्रि, २१ मार्च पूर्णिमा, २ अप्रैल वारुणी, ४ अप्रैल अमावस्या, ५ अप्रैल संवत्सर, १३ अप्रैल कुम्भ, रामनवमी, वैशाखी तथा मेष संक्रान्ति।

भगवानकी सच्ची पूजा

लेखक—श्री मंगलदास अग्रवाल, वाराणसी।

सन्त एकनाथ हृदयमें प्रभुकी झाँकी करते हुए गंगोत्रीके पुनीत जलको काँवरमें भरकर अपने साथियोंके साथ काशी होते हुए रामेश्वरकी ओर जा रहे थे। वहाँ जाकर वे उस जलसे प्रभुकी पूजा करना चाहते थे। ग्रीष्म ऋतु थी। इसी बीच एक दिन दोपहरकी जलती धूपमें सन्तने रेतीले मैदानमें एक गधेको प्यास से छटपटाते देखा। अविलम्ब काँवर उतारकर गंगोत्रीका पुनीत जल गधेके मुखमें डालकर एकनाथजीने मरणासन्न प्राणीकी जान बचाई। एकनाथके अन्य साथियोंको इस बातका दुःख हो रहा था कि इतने परिश्रमसे लाया हुआ गंगोत्रीका पुनीत जल व्यर्थ चला गया। उनकी ऐसी भावना देखकर एकनाथजीने उन्हें समझाया—"एकमात्र प्रभु ही सर्वत्र परिपूर्ण हैं। मेरी पूजा तो प्रभुने यहींसे स्वीकार कर ली।"

यदि हम विश्वरूप भगवानकी पूजाको अपनी दिनचर्यामें सम्मिलित कर लेते तो हमारा जीवन पूजामय बन जाता। हमारी पूजा सर्वांगीण पूजा हो जाती। भगवानकी पूजा समाप्त करनेके बाद हम स्वयं प्रसाद ग्रहण करते हैं। शीतका अनुभव होने पर हम अपने अंगोंको आवश्यक वस्त्रोंसे ढकते हैं। शरीरके रोग निवारणार्थ औषधियोंका सेवन भी करते है। पर हममेंसे अधिकांश इस बातको भूल जाते हैं कि अभी-अभी हम जिन प्रभुकी पूजा मन्दिरमें कर आये हैं वे ही प्रभु पुनः हमारी पूजा ग्रहण करनेके लिए विविध रूपोंमें हमारे सम्मुख उपस्थित हैं। वे प्रभु ही पूज्य सन्तके रूपमें प्रसाद पानेकी शान्तिसे बाट देख रहे हैं तथा वे ही कंगाल बनकर भिक्षा प्राप्त करनेके लिए करुण पुकार कर रहे हैं। वे ही एक रूप में सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित भद्र पुरुषके वेशमें दीनोंके शीत निवारणार्थ कम्बल बाँटनेके सम्बन्धमें हमसे परामर्श करने आये हैं और दूसरे रूपमें हमारे द्वारके सामने जाड़ेसे ठिठुरते हुए टाटके टुकड़ोंके लिए चिल्ला रहे हैं। ऐसे अवसरों पर हम भूल जाते हैं कि प्रभु ही इन सभी रूपोंमें हमारी पूजा ग्रहण करनेके लिए आये हैं। इसीलिए हम प्रायः उनके प्रति दुर्व्यवहार कर बैठते हैं। प्रभुकी सर्व व्यापकता का ज्ञान न होनेसे हमारी भगवत्पूजा अधूरी ही रह जाती है।

कभी-कभी हमारी ऐसी भावना होती है कि विश्वरूप भगवानकी पूजाके योग्य साधन हमारे पास नहीं है। पर यह हमारे मनका भ्रम ही है। वास्तवमें तो हमारे अन्दर पूजाकी

सच्ची चाह होनी चाहिए। चाह होने पर तो हम अपने द्वारा होनेवाले प्रत्येक कर्मसे प्रभुकी पूजा कर सकते हैं। यदि हम दूकानदार हैं तो अपने ग्राहकोंको प्रभुरूपमें देखकर सम्मान-पूर्वक उचित मूल्य लेकर उनकी सेवाकी दृष्टिसे यदि हम उन्हें ईमानदारीके साथ अच्छी वस्तु दे देते हैं तो इस प्रकारके क्रय-विक्रयसे ही विश्वरूप भगवानकी सच्ची पूजा हो जायगी। यदि हम चिकित्सक हैं तो प्रत्येक रोगीमें प्रभु की झाँकी करके, यदि हम शिक्षक हैं तो प्रत्येक छात्रमें प्रभुको विराजित देखकर और यदि वकील हैं तो प्रत्येक वादी-प्रतिवादी न्यायाधीश एवं साक्षी इत्यादिमें अपने इष्टदेवको ही अभि-व्यक्त देखकर यथायोग्य अपने विशुद्ध व्यवहार से उनकी पूजा कर सकते हैं। हम जहाँ जिस क्षेत्रमें हैं, जिस परिस्थितिमें जो भी काम करते हैं, वहीं उसी क्षेत्रमें, उसी परिस्थितिमें अपने कामको विशुद्ध बना सकते हैं और अपने सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिमें प्रभुको देखकर उन्हें अपनी विशुद्ध पूजा समर्पित कर सकते हैं। यदि अपने जीवनको पूजामय बनानेके लिए हम कटिबद्ध हैं तो सर्व शक्ति-मान प्रभुकी शक्ति अपने आप हमें ऊपर उठाने लगेगी और हमें स्पष्ट दीखेगा कि जिस वेशमें प्रभु पूजा ग्रहण करने आये हैं उसके अनुरूप पूजाकी सामग्री उन्होंने पहलेसे ही हमारे पास भेज रक्खी है। उन सामग्रियोंका खुले हाथों उपयोग करनेसे हमारा जीवन पूजामय बन जायगा। इस प्रकार सर्वत्र प्रभुको विराजित, सबको प्रभुका ही रूप देखकर यदि हम उन्हें सुख पहुँचानेकी चेष्टा कर सकें तो हमारा का[र्य] बन जायगा और हमारी पूजा सर्वांगीण हो [जा]यगी। हमारा एवं प्रभुका मिलन भी तुर[न्त] ही हो जायगा और उनकी सच्ची पूजा करके हम सदाके लिए सुखी हो जायँगे।

प्रभुके साथ हमारा जो सम्बन्ध है, व[ह] तो अनादि है, सदा स्थिर एक रस रहनेवाला है। उनके सम्बन्धमें कोई हेतु नहीं। वह सम्बन्ध अत्यन्त निर्मल, अपरिसीम प्रेमसे भरा है। इसीसे वे हमारे लिए अपना सर्वस्व दान भी करते हैं। उनके प्रेमकी शक्ति-सामर्थ्यकी भी सीमा नहीं, वह तो अनन्त असीम है। उनके लिए यह नहीं कहा जा सकता कि प्रभु यह कर सकते हैं, यह नहीं। वे सर्व समर्थ हैं, सब कुछ कर सकते हैं। साथ ही वे सर्वज्ञ हैं, सब कुछ जानते हैं। अतीत, वर्तमान, भविष्य का अणु-अणु उन्हें ज्ञात है, अगणित विश्व-ब्रह्मा[ण्ड] में कहाँ किस समय क्या हुआ, क्या हो रहा है और क्या होगा इसको वे पूरा पूरा जानते हैं। इसीलिए उनसे कभी तनिक सी भी भूल नहीं होती। ऐसे प्रभुको, प्रभुके साथ अपने नित्य सम्बन्ध को यदि हम जान लें, उनके सम्बन्ध-का ही एकमात्र भरोसा करके हम अपने कार्य-क्षेत्र में उतरें, तभी सफलता, आनन्द और सन्तोष आगे से आगे हमें वरण करनेके लिए तैयार खड़े मिलेंगे और हमारे द्वारा भगवानकी सच्ची पूजा हो सकेगी।

—०—

ग्राहक बनाइए

परमानन्द संदेशके ग्राहक बनाकर इसके प्रचार-प्रसारमें सहयोग देना आपका कर्तव्य है।
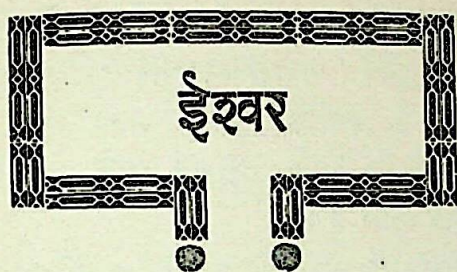
राधाकृष्ण साहु, गोमो, धनबाद

ईश्वर क्या हैं ? कहाँ है ? इत्यादि प्रश्न बराबरही उठाया जाता है। उत्तरभी कई प्रकार से दिया जाता है। इस सम्बन्धमें कुछ रोचक प्रसंग यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं।

वेदानुसार ईश्वर पूर्ण रूपेण पूर्ण हैं। उनमें कभी कमी हो ही नहीं सकती। यहाँ तक कि यदि पूरामें से पूरा (सम्पूर्ण) भी निकाल लिया जाय तोभी पूराही बचता है, वही ईश्वर हैं।

"पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।"

अंग्रेज कवि सैम्युएल टेलर कालरीजके अनुसार प्रेममें ही भगवान बसते हैं। बशर्ते कि वह प्रेम निर्मल हो, निष्पाप हो। उसके पीछे कोई स्वार्थ या छोटे बड़ेकी भावना न हो।

एक बार स्वामी विवेकानन्दने अपने गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंससे यही प्रश्न पूछा था कि 'ईश्वर क्या है ?' उन्होंने उत्तर दिया कि भिन्न-भिन्न रूपोंमें अपने सामने छोड़कर भगवानको कहाँ ढूँढ़ते फिरते हो ? जो जीवोंसे प्रेम करता है वही ईश्वरकी सेवा करता है।

"बहु रूपे सम्मुखे तोमार छरि,
कोथाय खुन्जिछ ईश्वर।
जीवे प्रेम करे जेई जन,
सेई जन सेवेछ ईश्वर।"

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि राम ब्रह्म चिनमय अविनासी, सर्व रहित, सब उरपुर बासी हैं। तर्क, बुद्धि, वाणी इत्यादिके द्वारा उनकी व्याख्या सम्भव नहीं है। 'राम अतर्क्य बुद्धि मन वानी' क्योंकि वे (भगवान) :—

"बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कर बिनु करम करै बिधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी।
महिमा जासु जाई नहिं बरनी॥"

महात्मा कबीरदासके अनुसार वह साईं घट घटमें रमता हैं। उनके लालकी लाली हर जगह है। हर वस्तुमें है। वे स्वयंभी अपने लाल (ईश्वर) के रंगमें सराबोर हैं।

'लाली मेरे लालकी जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥'

मगर घट-घट वासी परमात्माका पता स्वयं मनुष्यको ही क्यों नहीं होता है। वह अपने में न ढूँढ़कर दुनिया भरमें, मन्दिरोंमें, मस्जिदोंमें, गिरिजाघरोंमें तथा तीर्थों में ढूँढ़ता फिरता है। इस अज्ञानका रहस्य क्या है ? इसका कारण महात्मा कबीरदास इस प्रकार समझाते हैं कि एक बच्चाभी समझ लेगा।

आदमीमें भगवान उसी प्रकार बसते हैं

जिस प्रकार फूलोंमें बास (गन्ध) रहती है। फूलमें गन्ध रहती है यह आप सूँघकर जान सकते हैं। मगर यह नहीं बता सकते कि गन्ध जो आप सूँघते हैं वह फूलके किस हिस्सेमें है तथा उसका रूपरंग कैसा है। ठीक इसी तरह फूलकी गन्धकी भाँति यह बताना कठिन है कि भगवान मानव शरीरमें कहाँ तथा किस रूपमें वास करते हैं।

अपने शरीरमें निवास करने वाले परमात्मा को मानव दुनियाँ भरमें अज्ञानतावश ढूँढ़ता फिरता है। मृगकी नाभिमें कस्तूरी रहती है। मगर इसका ज्ञान उसे नहीं रहता है। कस्तूरी की सुगन्धसे वह मुग्ध हो जाता है। उसे पाने की खोजमें वह घास सूँघता फिरता है। यदि वह इस बातको जानता कि जिस कस्तूरीको वह जंगलों और घासोंमें ढूँढ़ता फिरता है, वह जंगलों और घासोंमें नहीं, बल्कि उसके शरीर (नाभी) में ही रहती है तो उसकी परेशानी दूर हो जाती। उसी प्रकार आदमी परमात्माकी अनुकम्पासे मुग्ध होकर उनकी खोजमें जंगलों और घासोंमें (मन्दिरों और मस्जिदोंमें) भटकता फिरता है क्योंकि उसे इस बातका ज्ञान नहीं रहता है कि उसके भगवान उसके शरीरमें ही निवास करते हैं।

'तेरा साईं तुज्झमें, ज्यों पुहुपनमें बास।
कस्तूरीका मिरग ज्यों, फिर-फिर सूँघै घास॥'

इसीके साथ एक जिज्ञासा और की जाती है कि 'क्या भगवान धर्म हैं!' धर्म शब्दका अर्थ होता है 'कर्तव्य'। मगर कोई एक कर्तव्य नहीं, बल्कि वे सम्पूर्ण कार्य-समूह जिनका पालन करना मनुष्यके लिये उचित है। उन्हीं कर्तव्योंमें से एक अत्यन्त प्रधान कर्तव्य है परमात्माको स्मरण करना, उनका नाम जपना तथा उनके प्रति श्रद्धा और विश्वास रखना। ऐसा करना मनुष्यका परम धर्म है। इस तथ्य की पुष्टि महात्मा सूरदासकी वाणीमें सुनिये :-

"सदा संघार्ती आपकी, जियकी जीवन प्रान।
सो तू विसरयों सहज ही, हरि ईश्वर भगवान॥
प्रभु पूरन पावन सखा, प्राननहु को नाथ।
परम दयालु कृपालु प्रभु, जीवन जाके हाथ॥
गर्भ वास अति त्रासमें, जहाँ न एको अंग।
सुनि सठ तेरो प्रानपति, तहाँ न छाड़यो संग॥
दिना राति पोखत रह्यो, ज्यों तमोली पान।
वा दुखतें तोहि काढ़िके, लै दीनो पय पान॥
जिन जड़ते चेतन कियो, रचि गुन तत्त्व विधान।
चरन चिकुर कर नख दिये, नयन नासिका कान॥
वेद पुरान स्मृति सबै, सुर नर सेवत जाहि।
महामूढ़ अज्ञान मति, क्यों न संभारत ताहि॥

क्षमा याचना

"परमानन्द सन्देश" वर्ष २ अंक २, ३ पृष्ठ २६, २७ पर गुरु नानक जीका जीवन चरित्र सहकारीकी असावधानीके कारण अप्रमाणिक रूपसे प्रकाशित हो गया है। यह लेख "कल्याण" गोरखपुर भाग ३ संख्या १ श्रावण संवत् १९८५ के पृष्ठ ९३ से अविकल उद्धृत किया गया है। पृष्ठ २७ की पंक्ति २७, २८, भ्रमोत्पादक अनर्गल और अमान्य हैं। इसके लिए हम सद्गुरु बाबाजी, सन्तगण, उदासीन समाज और पाठकोंसे क्षमा प्रार्थी हैं।

—सम्पादक

शुभकामनायें और सम्मतियां

उपराष्ट्रपति भारत सरकारकी शुभकामना

मैं आपके पत्र परमानन्दसन्देश की उन्नति के लिए अपनी हार्दिक शुभ कामनाएँ व्यक्त करता हूँ।

एस० राधा कृष्णन
११-१-१९६२

शिक्षा निर्देशक उत्तरसंदेश का संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि "परनन्दसंदेश" का मुक्ति मार्ग विशेषांक शीघ्र प्रकाशित होने जा रहा है।

आज कलके युगमें जब भौतिकवादकी वृद्धि हो रही है, यह आवश्यक है कि हम आध्यात्मिक यथार्थताओंकी ओर चेतना जागृत करें और तप और ऐश्वर्य राग और विराग, और योग और तितिक्षाके बीच उचित संतुलन बनाये रखें।

वास्तविक आध्यात्मिक शक्ति संयम और संतुलनकी देन है और जहाँ शक्तिका अखंड राज्य है वहाँ परमानन्द है।

मैं आशा करता हूँ कि शारदा प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित "परमानन्दसन्देश" में आध्यात्मिक तत्वोंकी पूर्ण प्रतिष्ठा होगी और उससे पाठकों को आत्मबल प्राप्त होगा।

मैं इस सत्प्रयासकी हृदयसे सफलता चाहता हूँ।

दिनांक : लखनऊ च० चक०
जनवरी २३-१-१९६२ शिक्षानिर्देशक उत्तरप्रदेश

भगवत शरण उपाध्याय काशी

"परमानन्द सन्देश" के कुछ अंक देखे। प्रयत्न साधु है। पत्रिका अनुभूतिकी विशद व्याख्या करती है। इसमें भक्त्यान्दोलन है पर उसे दर्शनका योग भी मिलना चाहिए। उस दिशामें अकिंचन मैं स्वयं जो कुछ भी करने योग्य हूँ, करनेको तत्पर हूँ।

भगवत शरण उपाध्याय
१०-९-६१

महामहोपाध्याय दत्तो वामन पोतदार कुलगुरु पुणे विद्यापीठ, पूना-७

"परमानन्द सन्देश" मासिक श्री शारदा रामजी महाराजके प्रेरणासे चल रहा है। आज का युग यन्त्राधीन है। बुद्धिवादका प्रभाव बलवान है। मनुष्यकी बुद्धि एक प्रमुख साधन है। और बुद्धिके द्वारा जितना ज्ञान हम मिला सकते हैं वह ज्ञान भी एक परमात्माका ही आविष्कार है। ऐसे ज्ञानका मनुष्यके भलाई के लिये उपयोग कैसे करना यह बहुत जटिल प्रश्न है। विनाशके रास्तेपर यदि वह ज्ञान हमें ले जायेगा तो यह दुनिया नष्ट ही हो जाएगी। तो कुछ अन्तर्मुख होकर चिंतन करना चाहिए। बुद्धिवादी चिंतन भी लाभकारी हो सकता है। किन्तु यहाँ बुद्धिवादसे अहंकारकी झाँकी पैदा होती है तब अश्रद्धा जोर पकड़ती है और

मनुष्य अन्धा सा हो जाता है। इसलिए सजग श्रद्धाकी आवश्यकता प्रतीत होती है। हाँ यह श्रद्धा ऐसी न हो कि जिससे बुद्धि और तर्क मिट जायँ। श्रद्धा बुद्धि विवेक करनेका सामर्थ्य पैदा करना चाहिए। अध्यात्म विद्या इस शोध में कुछ मार्ग दर्शन अवश्य कर सकती है। भक्ति भाव विशुद्ध हो तो मनुष्यताकी ऊँची कोटि पा सकते हैं। केवल अन्धश्रद्धा और केवल अहंपर्यवसायी बुद्धिवाद शान्ति समाधान नहीं दे सकेंगे।

इस दृष्टिसे 'परमानन्द सन्देश'' से पाठकगण अवश्य उपकारी साहित्य पा सकते हैं और उचित अंशोंको लेकर सफल हो सकते हैं।

मेरी शुभ कामनाएँ दत्तोवामन पोतदार
१७–१०–६१

राधाकृष्ण साहु सम्पादक–"जागरण" गोमो, धनवाद

परमानन्द सन्देश जैसा उपयोगी पत्र निकालनेके लिये आपलोगोंकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी ही होगी। इतनी सरल भाषामें इतना उपयोगी पत्र, वह भी आध्यात्मिक विषयका हिन्दी ही नहीं किसी भी भाषामें दुर्लभ है। रचनाओंका चयन अत्यन्त सुरुचि पूर्ण है। सभी रचनायें एक ही साथ मनोरंजक भी हैं और शिक्षाप्रद भी।

हिन्दू जाति दिनानुदिन धर्म विमुख होती जा रही है। इस पत्रके प्रचारसे इस महान् जातिकी दुर्गति दूर होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। "परमानन्द सन्देश" के अभ्युदयके लिये मेरी हार्दिक शुभकामना प्रेषित है।

राधाकृष्ण साहु
१०–९–६१

विष्णुराम सनावद्या "सुमनाकर" ऊन (मध्य प्रदेश)

परमानन्द सन्देश प्राप्त हुआ। वास्तवमें अंकमें प्रकाशित सारी सामग्री पठनीय है। पत्रिकाकी छपाई तथा सफाई बहुत ही सुन्दर है। इस अशान्त वातावरणमें भगवद् भक्तिका सच्चा मार्ग दिखाकर मानवको शान्ति प्रदान करनेमें यह मासिक पत्र काफी सहायक सिद्ध होगा। ऐसा मेरा विश्वास है। इस धार्मिक एवं अध्यात्मिक पत्र की उत्तरोत्तर उन्नति हो यही मेरी हार्दिक कामना है।

विष्णुराम सनावद्या

आवश्यक सूचना

१—प्रतिमास सावधानी के साथ प्रत्येक ग्राहकों के पास "परमानन्द सन्देश" भेजा जाता है। पता गलत होने अथवा पोस्ट आफिस की असावधानी से जिन ग्राहकों को अङ्क नहीं मिलता है उन्हें तुरन्त अपना सही पूरा पता साफ-साफ लिखकर कार्यालय को सूचित करने की कृपा करनी चाहिए।

२—पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

हमारे सहयोगी

श्रीयुत् सेठ हंसराज जी ठक्कर, रविवार पेठ पूना ने इस वर्ष "परमानन्द सन्देश"के लगभग १००ग्राहक बनाये हैं। इसके लिए परमानन्द संदेश आपका आभारी है।

श्रीमती रुक्मिणी देवी तथा श्री भीमनदासजी पूनाने भी ग्राहक बनाकर सहयोग किया है इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

ॐ नम आत्मने

सर्व ग्रह शान्ति

मुक्ति सोपान

निमित्त कारण

सद्गुरु बाबा शारदाराम उदासीन मुनि

ग्रह कोपसे भयातुर जनताके कल्याणार्थ धनवान प्रभु भक्त लोग तोन माहसे "मुक्ति सोपान" का निःशुल्क वितरण करवा रहे हैं। जिज्ञासुओं की अत्यधिक माँग पर हम उक्त पवित्र पुस्तिका यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। जिसमें सर्व साधारण श्रद्धालु जनता इसके नित्य जप-पाठसे लाभ उठा सकती है।—सम्पादक

मंगलाचरण

ॐकार मंगल शान्ताकारम्।
जय सर्व व्यापी ॐकारम्।१।
जय निर्गुण मंगल शान्ताकरम्।
जयसर्वव्यापीनिर्गुण सुखसारम्।२।
जय निरंकार मंगल शान्ताकारम्।
जय सर्व व्यापी निरंकार निष्कामम्।३।
जय निरंजन मंगल शान्ताकरम्।
जय सर्वव्यापोनिरंजन सुखकारम्।४।
जय मंगल ईश्वर शान्ताकारम्।
जय सर्वव्यापो ईश्वर दुःख पारम्।५।
जय परमेश्वर मंगल शान्ताकारम्!
जय सर्वव्यापी परमेश्वर उरधारम्।३।
जय अच्युत मंगल शान्ताकारम्।
जय सर्वव्यापो अच्युत परमानन्दम्।७।
जय मंगल ब्रह्म शान्ताकारम्।
जय सर्व व्यापी ब्रह्म सर्वाधारम्।८।
जय मंगल परमात्मा शान्ताकारम्!
जय सर्वव्यापी परमात्मा अपारम्।९।

जप मन्त्र

ॐ ब्रह्म सोहं जाप।
शुद्ध ब्रह्म आतम आप।
आदि गुरु हँसा अवतार।
आतम मेधावी सनत् कुमार।
ॐ सत्नाम् . श्रुत।
नाम जप जीवन मुक्त।

—०—

ॐ कार बन्दना प्रथम सोपान

ॐ बन्दना मंगल सुखदाई।
जेहि उर बसै परम पद पाई।१।
ॐ बन्दना जेहि चित आवै।
पारब्रह्म मह सोई समावै।२।
ॐ बन्दना की प्रभुताई।
मुद मंगल चहुँ दिस छाई।३।
ॐ बन्दना बन्दो नित भाई।
आप मुक्त बहु जनन तराई।४।
ॐ बन्दना संचार उर आवै।
चार पदारथ सहज सुहावै।५।
ॐ बन्दना ब्रह्म की भक्ति सोई।
भक्ति कर शक्ति लह कोई।६।
ॐ की शक्ति जानै सोई।
आतम ब्रह्म प्राप्ति जब होई।७।
ॐ समर्थ नख सिखे बिराजे।
पिंड ब्रह्माण्डमें आपी साजे।८।

ॐ बन्दना कर वैराग बढ़ावै।
ज्ञान की लरी ताहि सुहावै।९।
ॐ बन्दना मन किया पयाना।
वेद वाणी सत् कर जाना।१०।
ॐ बन्दना है ब्रह्म दिदारा।
श्रुति सिद्धान्त किया पुकारा।११।
ॐ बन्दना हित लग भाई।
मानुष जन्म दिया ॐ साँई।१२।
ॐ बन्दना सुन्दर शीतल जल।
उपजै अन्दर नासै मलीन मल।१३।
ॐ बन्दना मानसरोवर सोहा।
आत्म हंसा तहहि जोहा।१४।
ॐ बन्दना करना सब भाई।
पुनि जीव जासो ना पछताई।१५।
ॐ बन्दना अहं ग्रह आनो।
सर्व शरीर माह ब्रह्म समानो।१६।
ॐ बन्दना जप किया बिचारा।
ॐ उर अन्दर बसे उदारा।१७।
ॐ जपनहार मोक्ष सुख पाया।
त्रिभुवन पति सो आप कहाया।१८।
ज्यों दीपक रवि माह समाया।
दीपक से तब रवि कहाया।१९।
मोक्ष आत्मा सर्व व्यापी।
सर्व लोक में आनन्द आपी।२०।
ॐ उपासक ब्रह्म ज्ञान सुखानी।
आत्म सुखी सदा ब्रह्मज्ञानी।२१।
ॐ नाम कोउ जपे सुचेता।
ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म का वेत्ता।२२।
ॐ ब्रह्म मह रहा समाई।
ॐ ब्रह्मज्ञान की यह प्रभुताई।२३।

ॐ बन्दना कृष्ण ने बन्दा।
ब्रह्म कहा गीता में छन्दा।२४।
ॐ बन्दना मुनिन उर धारी।
गुरु रूप जग भये उजियारी।२५।
दया क्षमा शान्ति ॐ सुझाई।
शील विचार नेम जप ताई।२६।
ॐ प्रसाद सदा बन आई।
भक्ति प्रेम आचार सेवकाई।२७।
ॐ बन्दना उर मह राखा।
मानुष जन्म का यह परिभाषा।२८।
"ॐ खजाना जोड़हुँ रे भाई।
काल फिरे तुमरी सर नांई।२९।
ॐ खजाना सदा जोर बटूरी।
कालहुँ मुरझै जनु काल देखोरी।३०।
ॐ खजाना मालामाल कहावै।
तरस रहे भूपाल काल डर पावै।३१।
मुमुक्षु जनन को प्रान अधारा।
ॐ करत भक्तन जयकारा।३२।
मंगल मोद का पसरा पसारा।
जो कोउ लिया ॐ का सहारा।३३।
ॐ बन्दना से सभी सुधरता।
यहाँ वहाँ का शुद्ध ॐ करता।३४।
ॐ बन्दना से लहा विश्रामा।
चौरासी फिरका मिटा ललामा।३५।
शारदाराम ॐ जप ॐ समाई।
ॐ बन्दना सबै सुखदाई।३६।

❀ निर्गुण बन्दना द्वितीय सोपान ❀

ॐ निर्गुण बन्दना परम कल्याना।
उपजे शान्ति ध्यान अरु ज्ञाना।१।

निर्गुण बन्दना कर धर ध्याना।
जिस से प्राप्ति सत सुजाना।२।
निर्गुण वन्दना किये सुरति थीरा।
पारब्रह्म घर पहुँचे धीरा।३।
निर्गुण बन्दना कर आत्मदरसा।
निज स्वरूप शुद्धि बुद्धि परसा।४।
निर्गुण बन्दना संग सुरत रोका।
अद्वैत ब्रह्म लह कोई न टोका।५।
निर्गुण बन्दना बन्दे बन्दा।
संसै भरम छूटा तिस फन्दा।६।
निर्गुण बन्दना ऊभै दिस वाही।
गुरु कृपासे बिरला कोउ निबाही।७।
निर्गुण बन्दना अमोलिक लाल।
जिस घट बसा सो भया निहाल।८।
निर्गुण बन्दना करी एक घड़ी।
जिस यह दिया सुन्दर तन मड़ी।९।
निर्गुण बन्दना करो एक बारा।
जिसने दिया सुन्दर घरद्वारा।१०।
निर्गुण बन्दना कर अनहद सुनी।
बैठ एकान्त गुनत है गुनी।११।
निर्गुण नाम गुणन से पार।
सत रज तम किए तिरस्कार।१२।
तीन गुण वेद सच कर धुनी!
तिससे परे निर्गुण ब्रह्म भनी।१३।
मूल आधार सबही का निर्गुन।
शोध रहा श्रुति मुनि जन।१४।
याते निर्गुण पुनि पुनि बन्दो।
मात पिता निर्गुण आनन्दो।१५।
निर्गुण बन्दना नाम रस पाई।
बिन बन्दना बहु जन्म गवाई।१६।
निर्गुण बन्दना परम है आरो।
कर्म अकर्म को छेदनहारो।१७।
निर्गुण बन्दना दिव्य है अग्नि।
शुभ अशुभ को करै दग्धग्नि।१८।
निर्गुण बन्दना घोल घोल पीऊ।
शारदाराम ब्रह्म कहावे जीऊ।१९।

❀ निरकार बन्दना तृतीय सोपान ❀

ॐ मंगल रूप निरंकार कहावै।
मंमल दाता आप सदावै।१।
ॐ बन्दो निराकार कर जोरी।
कृपा करहु आस पूरण मोरी।२।
निरंकार कृपाल दीनन ऊपर।
शक्तिवर्धक बन्दो तूहि बर।३।
मन बुद्धि चित्त निरंकार प्रकासै।
ज्यों सब जीवन को रवि बिगासै।४।
निरंकार बन्दना मिटै अज्ञाना।
ज्यों उदित भानु तिमिर नसाना।५।
निरंकार बन्दना कर हरदम भाई।
स्वास ग्रास सुफल हो जाई।६।
निरंकार बन्दना बहु जन गाई।
अनेकों जन्मे ऋषि मुनि आई।७।
अवतार बन्दना करते सब आये।
कटु बुद्धि बस नर बिसराये।८।
भक्त ब्रह्मज्ञानी बन्दे संन्यासी।
बन्दे आतम पद ॐ ॐ आसी।९।
भक्त रक्षक निरंकार कृपाला।
प्रेरक सर्वाधार सब काला।१०।
निरंकार बन्दना नर करिहो।
श्रीगुरु चरण रज सिर धरिहो।११।
निरंकार बन्दत आलस जाई।

मोह ममता उलूक पराई ।१२।
निरंकार जप कर प्रकासा ।
किरण फूटी रजनी भय नासा ।१३।
निरंकार बन्दना से मन प्रसन्दा ।
ज्यों भानु देख शोभा मकरन्दा ।१४।
निरंकार बन्दना जो जन करिहै ।
चार पदार्थ सहज सुधरिहै ।१५।
निरंकार बन्दना अचल चाकरी ।
नर देवे प्रभु क्यों कर धरी ।१६।
निरंकार बन्दना परम सेवकाई ।
यह मार्ग साधु सन्त दिखाई ।१७।
निरंकार बन्दना जपो प्यारा ।
जो इच्छै सोई सुख सारा ।१८।
सत् की डंडी धर्म का पलरा ।
तोलो बन्दना ब्रह्म के दुलरा ।१९।
तोलत रहो ॐ कार दिन राती ।
ऐसा सौदा होय संगाती ।२०।
निरंकार जय जय बन्दना अपारा ।
निमिष चितवो परा भव पारा ।२१।
निरंकार तुहि सब विधि विनवो ।
आत्मज्ञान दे आपी चितवो ।२२।
निरंकार तू कर सुध मोरी ।
पिता पुत्रका ज्यों दुख मरोरी ।२३।
निरंकार मोहि आस तुम्हारी ।
पुत्र पिता घर सदा सुखारी ।२४।
निरंकार भजन कारन आया ।
शारदाराम सत्य दरसाया ।२५।

❀ निरंजन बन्दना चतुर्थ सोपान ❀

निरंजन बन्दना मङ्गल मूला ।
ज्यों शरीर रक्षक प्राण अनुकूला ।१।
निरंजन बन्दना परम सुखदाई ।
ज्यों हर्षपूर्ण चन्द्र उदधि दिखाई ।२।
निरंजन बन्दना मोद प्रमोद दाई ।
जिमि जल बरसे भूमि सोहाई ।३।
निरंजन बन्दना मन कर अनुकूला।
भूल रहा प्रबल मोहके सूला ।४।
काहे नर अपयश न डरहो ।
मोह बिबस ज्ञान अपहरही ।५।
निरंजन बन्दना कर मुमुक्षु अमूढ़ा ।
माया ममता क्यों स्वप्न आरूढ़ा ।६।
देख सुजन तेरे निज देखत ।
काल चपेटे रंक क्या भूपत ।७।
काल खाये सब तन को झारी ।
नर बपुरा क्यों ब्रह्म बिसारी ।८।
जानत तूँ मैं अमर जग माहीं ।
करत अनीति तोहि डर नाहीं ।९।
काल सिर ऊपर मुक्की मारी ।
निरंजन बंदना नहीं किये सुरारी ।१०।
निरंजन बन्दना नहीं मन मानी ।
ताकर फल आगे सिरपर जानी ।११।
मगरूरी फल पुनि काल जोही ।
धर्मराज पह सासत होही ।१२।
निरंजन को नित वन्दो भाई ।
यह यम छूटनकी जुगति उपजाई ।१३।
निरंजन बन्दना बहु विधि कही ।
सभी नाम दुःख नाशक सही १४।
ॐ निरंजन ब्रह्म बन्दो दिनराती ।
त्रिगुणतापमिटाशीतल भई छाती ।१५।
नाम भजत समीप चेतन आई ।
लोक व्यवहार सभी सिद्ध हो जाई ।१६।

विचारसे जड़ चेतन नगचाई ।
समझ देख सुजन जन भाई ।१७।
तैसे प्रभु निरंजन का ले नामा ।
उसका पूरण हो सब कामा ।१८।
मदगत माया जिन कर पाई ।
ताहि निरंजन शरण सुखदाई ।१९।
निरंजन बन्दना निषेध मलहारी ।
माया ममता भरम बिसारी ।२०।
निश्चय कृपाल होय दयाला ।
निरंजन बन्दना कर यह हाला ।२१।
शारदाराम रिद सोध बिचारी ।
निरंजन बन्दना परम हितकारी ।२२!

—ऽ:※:ऽ—

※ ईश्वर बन्दना पंचम् सोपान ※

ईश्वर बन्दना मंगल करणी ।
सघन बिघन दुख दारुण हरणी ।१।
ईश्वर बन्दना मन कर ऐसे ।
ब्रह्मा धोये चरण बावन के जैसे ।२।
ईश्वर बन्दना सिर धर धरणी ।
विष्णु कर ज्यों भृगुकी चरणी ।३।
ईश्वर बन्दना करत दिन जाये ।
सो जन पारब्रह्म को पाये ।४।
ईश्वर बन्दना कर यहि भाँती ।
रामनाम ध्रुव प्रहलाद सोहाती ।५।
ईश्वर बन्दना निज रिपु दलनी ।
शिवसंग भये मदन जस करनी ।६।
ईश्वर बन्दना सुमिर दिनराती ।
जिमि सुमेरु से गंग सोहाती ।७।
ईश्वर वन्दना अंकुश सुन्दर ।
मन बस कुंजर है यह इंदर ।८।
ईश्वर शोध में भाव रख बिधिवत ।
परखै आतम शुद्ध मन चितवत ।९।
ईश्वर वन्दना ज्ञान कर तेगा ।
दुश्मन दमन मद ममता छेगा ।१०।
ईश्वर बन्दना लोक सुहाती ।
मति दुर्मति धोवै बहु भाँति ।११।
ईश्वर बन्दना सुमति संचती ।
सब दिन अचरज देख अघाती ।१२।
रूप अकथनीय कथन नहीं आवै ।
दसवें द्वार ईश्वर शोर मचावै ।१३।
अस अनुभव भय सकल बिनाशी ।
उर रहे ईश्वर अजय अविनाशी ।१४।
दसवें द्वार का सूक्ष्म लेखा ।
समुझै सोइ जो नित नित देखा ।१५।
ईश्वर साक्षी कहो सत भाखी ।
ब्रह्म रूप सब देत है साखी ।१६।
ईश्वर वन्दना कर मन मौना ।
दसवें द्वार का तब सुन बैना ।१७।
झुनुक झुनुक झुनुकै दिनराती ।
सुनिसुनि शीतल मगन भई छाती ।१८।
यह अनुभव सेवै जो कोई ।
मिटै चौरासी ईश्वर सो होई ।१९।
ईश्वर भजन में रुचि रख आछो ।
सतगुरु जुगत नित रह साछी ।२०।
ईश्वर ईश्यर हर दम रटना ।
शारदाराम आतमारामहि लहना ।२१।

—ऽ:※:ऽ—

※परमेश्वर बन्दना षष्ठम् सोपान※

परमेश्वर बन्दना कर मन भाई ।
गर्भवास तुहि भयो सहाई ।१।

परमेश्वर बन्दना कर सब घरी ।
उदर अन्दर कौल तुम करी ।२।
परमेश्वर बन्दना करो हित लागी ।
बचन तब का सत करहु सुभागी ।३।
परमेश्वर बन्दना सब मत साखी ।
गुरु पद रज नयन बिच राखी ।४।
परमेश्वर बन्दना से मन तृपित ।
ज्यों रुचिकर भोजन कर नितनित ।५।
परमेश्वर बन्दना कर मन मौना ।
अनेक प्रकार बोलत ज्यों बैना ।६।
परमेश्वर वन्दना कर लख हँसा ।
व्यापक आत्मा का सब अंसा ।७।
परमेश्वर वन्दना कर मन मीता ।
काम क्रोध मद त्यागो नीता ।८।
परमे.वर वन्दना का फल शान्ति ।
नामरस पी निर्मल हो कान्ति ।९।
परमेश्वर वन्दना कर शुद्ध बुद्धि ।
आत्म धनका कर मन शुद्धि ।१०।
परमेश्वर वन्दना करो भागवाना ।
परमात्मा आत्मा सर्व समाना ।११।
परमेश्वर वन्दना किये है जो नर ।
जग जस अहे अन्त मोक्षवर ।१२।
परमेश्वर केहि कारण जग भेजा ।
सो तू समझ नाम रस पीजा ।१३।
परमेश्वर रस पिवत नाम अमोला ।
सर्व रस फीको और किम तूला ।१४।
परमेश्वर वन्दना किस संग साठा ।
कल्पतरु लोग कह काठा ।१५।
परमेश्वर वन्दना देनी असीम अहहो ।
कामधेनु कोटिन न लहही ।१६।
परमेश्वर वन्दना धनका धना ।
कोटि सागर ना पुरवे रतना ।१७।
परमेश्वर वन्दना कोटि प्रकाशा ।
सूरज चंद्र अग्नि प्रकाशके आशा ।१८।
परमेश्वर वन्दना असीम चाँदनी ।
नित सर्व चाँदनी करती वन्दनी ।१९।
आत्मज्ञान का करत मन आसा ।
परमेश्वर वन्दना करत खुलासा ।२०।
शारदाराम परमेश्वर उर आनी ।
परम प्रकाश भया सुख दानी ।२१।

❀ अच्युत बन्दना सप्तम् सोपाद ❀

अच्युत बन्दना दे ज्ञान विज्ञाना ।
गुरु कृपासे अच्युत माह समाना ।१।
अच्युत बन्दना अगम निगम बताये ।
बन्दि बन्दि अच्युत कह पाये ।२।
अच्युद बन्दना नित सुख देनी ।
ज्ञान वैराग विज्ञान निसेनी ।३।
अच्युत वन्दना गुन मन चुनी ।
अच्युत है त्रिभुवन का धनी ।४।
जाचकन का पुरवत प्रभु आसा ।
सदा सब भक्तन का है विश्वासा ।५।
अच्युत बन्दना कमल रिद राखी ।
ईश्वर ब्रह्म जहाँ नित साखी ।६।
अच्युत बन्दना नाभि करे निवासा ।
नाभिचक्र से चलत सब श्वासा ।७।
जाको सतगुरु ने परखावा ।
अच्युत ब्रह्म ताहि जन पावा ।८।
अच्युत ब्रह्म अचरज जुनु भावै ।
प्रबल लेख लखबे तब आवै ।९।
उनमस्त भया त्रिगुण मत क्षीण ।
तह पर हरदम कुशल प्रवीण ।१०।
परम आनन्द अखंड दिन राती ।

अच्युत बन्दना बुद्धि बिच भाँती ।११।
चेष्टा करै बालक जस नाईं ।
अस उनमस्त भया अच्युतमें जाईं ।१२।
सोईं अच्युत को अब लह भाई ।
सब घट अन्दर रहा समाई ।१३।
प्रभु अच्युत ब्यापै सब देशा ।
वही अवतार धर देत सन्देशा ।१४।
जुगति जुगतसे देख रे भाई ।
अच्युत का सब अंश कहाई ।१५।
विभूति रूप गीता मैं प्रभु गाई ।
जानन हार जानत है भाई ।१६।
अच्युत अंश जीव सदा कहाई ।
मिला अहै घटाकास की न्याई ।१७।
जितने जगमें भयो विभूति ।
श्रेष्ठ अच्युत अंश जानहुँ नीति ।१८।
अच्युत अंश इन बिधि होईं ।
जल तरंग ज्यों जल बिच सोईं ।१९।
शारदाराम अच्युत बंदना दरसाई ।
जो जोत रूप से सर्व समाई ।२०।

❀ ब्रह्म बन्दना अष्टम् सोपान ❀

बंदो ब्रह्म निज बारंबारा ।
जिसकी कृपा उतरो भव पारा ।१।
बंदो ब्रह्म निज आठो जामा ।
बन्दि बन्दि लहो विश्रामा ।२।
ब्रह्म बंदो सब मूरत माही ।
जड़ चेतन सब ब्रह्म समाही ।३।
ब्रह्म रचा सो रचना सुखदाई ।
अनेक भाँति रचना उपजाई ।४।
शुद्ध ब्रह्म परम हितकारी ।
मन मूरख कस ताहि बिसारी ।५।
ब्रह्म बंदत रहो होय उपकारा ।
जीव उतरे चौरासी पारा ।६।
जीव उपकार मन तुहि से भावै ।
ब्रह्म बंदना श्रुति अस गावै ।७।
मन भावै जीव मोक्षपद होईं ।
ब्रह्म बन्दना करै जो कोईं ।८।
ब्रह्म बंदना अमृत सम भाईं ।
अमृत पीवै सो अमर कहाईं ।९।
अमृत प्रगट पुरुषारथ से होईं ।
सुर असुर मथा है सोईं ।१०।
अनुभव सन्तन ब्रह्म बंदना गाईं ।
सोई श्रुति स्मृति मुनिन दृढ़ाई ।११।
ब्रह्म बंदना वेद से प्रगट होईं ।
आदि युगादि अनादि है सोईं ।१२।
ब्रह्म ध्यान का करो विचारा ।
जीवन हित लग वेद पुकारा ।१३।
ब्रह्म रूप देखो जस वेद कहा ।
करत विचार विज्ञ जन लहा ।१४।
अनंत पाताल पातालन के माही ।
तहाँ ब्रह्म का पाँव समाही ।१५।
अनन्त आकाश ऊँच से ऊँचा ।
तहाँ ब्रह्म का शीश पहुँचा ।१६।
अष्टदिशा लग दिशा जो पसरी ।
ब्रह्म स्रवन सर्वत्र है सगरी ।१७।
सूरज चन्द्र अस नेत्र करोरी ।
सोई स्वामी ब्रह्म को हाथ जोरी ।१८।
सर्व तह हाथ पाँव कहाईं ।
ऐसो ब्रह्म आत्मा सर्व समाई ।१९।
रोमावलि जेतिक बन राया ।

उदर माह ब्रह्माण्ड समाया ।२०।
तनु के चक्र से उदधि कहाई ।
नदिया सब नाड़ी मिल जाई ।२१।
पसीना तनका तारागण सुहाई ।
श्वाँस आपका रक्तवर्धक कहाई ।२२।
बाँह अनन्त चहुँ दिस फैलाई ।
लेत देत शुभ अशुभ सदाई ।२३।
मुख अग्नि नासिका मही कहाई ।
चिबुक प्रेम ग्रीवा स्वर्ग सुहाई ।२४।
ओठ उन्मुनि हरदम निवासा ।
ब्रह्म अस करै सदहि वासा ।२५।
जीभ अनन्त ब्रह्म केर दिखाई ।
ब्रह्म बसा तन मन माह सदाई ।२६।
नख द्युति चमकै चहुँ दिस ताई ।
कच मेघ भाल परम सुहाई ।२७।
अहंकार एकसे अनेक सोहाये ।
ब्रह्म का अस अहंकार कहाये ।२८।
ब्रह्म का मन चन्द्र सबका कहाई ।
मन मैं रहा ज्ञान दृढ़ाई २९।
चित चितवन ब्रह्म अस करिया ।
सबको प्रगट हो सत किरिया ।३०।
ब्रह्म को बुद्धि व्यापिनी कहाई ।
बुद्धि मह आत्म सदा सुहाई ।३१।
जीव रूपसे आत्म ब्रह्म समाई ।
अधिष्ठान रूपसे ब्रह्म कहाई ।३२।
सोई ब्रह्म की बन्दना घनेरी ।
फिरैना मति लाखों कोइ फेरी ।३३।
अस ध्यान मैं डूबे जो कोई ।
सत्य बंदना ब्रह्म का सोई ।३४।
शारदाराम ब्रह्म विराट दरसाई ।
दिव्य रूप से सर्व समाई ।३५।
मुनि शारदा देही देह विचारी ।
देह परिणामी देही सर्व आधारी ।३६।

❀ परमात्मा वन्दना नवम् सोपान ❀

परमात्मा बंदना मंगलदाता ।
ज्ञान विवेक भक्ति रस राता ।१।
परमात्मा बंदना बन्दो नर प्यारे ।
जो चाहो निज ब्रह्म दिदारे ।२।
परमात्मा बंदना उर लेऊ धारी ।
दोनों पास जो चाहो उजियारी ।३।
परमात्मा बंदना मन से पुकारा ।
पहुँचै सोई प्रभु के द्वारा ।४।
परमात्मा बंदना बंदो मन लाई ।
आखिर यह जग सपन कहाई ।५।
परमात्मा बंदना कर सिर नाई ।
काल को चोट कबहुँ ना खाई ।६।
परमात्मा बंदना कर सिर धारो ।
तस्कर पाँचों होत खुआरी ।७।
पाँच पच्चीस तिस संग रहते ।
परमात्मा बंदना से सब डरते ।८।
परमात्मा प्राण प्राण के अधारी ।
बन्दो सुजन सदा सुखकारी ।९।
परमात्मा बंदना मंगलकारी ।
सुमरि सुमरि नर होय सुखारी ।१०।
परमात्मा बंदना मन रंगारी ।
गुण अनमोल आवै उर सारी ।११।
धृति कृति उर में ध्यावै ।
परमात्मा बंदना सुमति बढ़ावै ।१२
परमात्मा बंदना फलफलत अनेका ।

दया दान क्षमा पुण्य विवेका ।१३।
परमात्मा बंदना सत संतोष बढ़ावै ।
शील शान्ति धीरज उपजावै ।१४।
परमात्मा बंदना से मन अनुरागा ।
विशुद्ध बिचार बढ़ै बैरागा ।१५।
परमात्मा बंदनाको नित ध्याई ।
यम नियम प्राणायाम बढ़ाई ।१६।
परमात्मा बंदना से सब पावै ।
अध्यात्म सम्पत्ति सुलभ हो जावै ।१७।
अहिंसा सत्य ब्रह्मचर्य कमावै ।
शौच संतोष तप में मन लावै ।१८।
परमात्मा बंदना स्वाध्याय बढ़ावै ।
जप तप ब्रह्म देव पूजन ध्यावै ।१९।
परमात्मा बंदना से शुभ क्रिया जागी ।
सेवा सतसंगमें नित रुचि लागी ।२०।
परमात्सा बंदना ब्रह्मज्ञान जगावै ।
अहम् ब्रह्मास्मि वृत्ति दृढ़ावै ।२१।
परमात्मा बंदना आनंद दाई ।
सत् चित् आनंद सर्व समाई ।२२।
परमात्मा बंदना फल दरसाई ।
तत्त्वमसि निश्चय हो जाई ।२३।
परमात्मा बन्दना बढ़त बढ़ावै ।
अयमात्मा ब्रह्म कहलावै ।२४।
मन वाणी की सरलता दिखाई ।
परमात्मा बन्दना का फल पाई ।२५।
परमात्मा बन्दना भक्ति कर पाई ।
सोई श्रद्धा भक्ति गुरु में लाई ।२६।
परमात्मा बन्दना श्रेय दरसावै ।
पूरब लेख से बनत आवै ।२७।
परमात्मा बन्दनाका जो जन आसी ।
सो बनी है परमात्मा घर बासी ।२८।
परमात्मा बन्दना हृदये लगाई ।
शम-दममें परमात्मा रहत समाई ।२९।
परमात्मा बन्दना मुक्तिपद दाई ।
जाका सरूप आपे ब्रह्म कहाई ।३०।
परमात्मा पुकारती जनता चहुँओरा ।
आवो रामकृष्ण रक्षक प्रभु मोरा ।३१।
आप सुन सुन करते निठुराई ।
खलबली जनतामें मचीमचाई ।३२।
खलबली निवारक धरहु अवतारा ।
आपका बच्चे सब करहु सम्हारा ।३३।
पिता निठुर जब हो जावै ।
नादान बच्चे तब कौन बचावै ।३४।
उठो प्रभु आप निठुरता त्यागो ।
बच्चन के सेवा में लागो ।३५।
आदि काल से सृष्टि सम्हालते आई ।
अवतार धर-धर दुष्ट नसाई ।३६।
बिनती परमात्मासे बहु जनता केरी ।
सुनै न सुनै जनता सदा चिनेरी ।३७।
शारदाराम बहु अकुलाई ।
नैन प्यास दर्शन की ताई ।३८।
शारदाराम रिदे राम फुरमाई ।
परमात्मा मिलनका भाव दरसाई ।३९।

दोहा

प्रभु सर्वज्ञ श्रीरामजी,
सर्वज्ञ कृष्ण विश्वनाथ ।
हाय-हाय जनता खैंचतानमें,
शीघ्र आय करहु सनाथ ।१।
अष्ट प्रकृति सूरज चंद,
साख देये दिनरात ।

नवम सोपान बंदना नित,
अंतर्यामी प्रेरित कुशलात ।२।

मुक्ति सोपान पाठ सर्व ग्रह शान्ति निमित्त परमात्माजी को अर्पण शुभमस्तु

नवम् मंत्र

ॐ कार ब्रह्मणे नमः ।१।
ॐ निर्गुण ब्रह्मणे नमः ।२।
ॐ निरंकार ब्रह्मणे नमः ।३।
ॐ निरंजन ब्रह्मणे नमः ।४।
ॐ ईश्वर ब्रह्मणे नमः ।५।
ॐ परमेश्वर ब्रह्मणे नमः ।६।
ॐ अच्युत ब्रह्मणे नमः ।७।
ॐ ब्रह्म ब्रह्मणे नमः ।८।
ॐ परमात्मा ब्रह्मणे नमः ।९।

———

❀ आरती ❀

आरती नित नित होत निरंकारी ।टेक
अज गैबी बाजा नित ही बाजे ।
घंटा शंख मुरली नगारी । आ०
धूप दीप सूरज चंद्रिका ।
चवर झोल रही पवन झोलारी।आ०
मंद सुगंध बनस्पतियाँ पुष्प हैं ।
जल प्रेम कलश कलसारी । आ०
चंदन चावल नाम भोग सोहावे ।
आत्मा रस लहक लहकारी ।।आ०
शय्या शांति बिचार तकिया ।
ब्रह्मज्ञान ओढ़ाया ओढ़नारी । आ०
शारदाराम आरती ॐ भावै ।
सहज भव पार तरनारी ।।आ०

॥ प्रार्थना ॥

हे ॐ अक्षर ब्रह्म अविनाशी ।
ॐ अघ खंडनहारो ।१।
हे गोविंद हे गोपाल ।
हे जीवन रखवारो ।२।
हे अविनाशी हे शिव दाता ।
आपे सर्व अधारो ।३।
हे मधुसूदन हे राम रमणम् ।
हे ब्रह्म अवतार अपारो ।४।
हे आत्मा हे परमात्मने ।
हे अच्युत दुरमति संघारो ।५।
हे भक्त जनन के मालिक ।
आप करते प्रान संचारो ।६।
हे प्रभु सर्वज्ञ अंतर्यामी ।
लीला आप अनंत करतारो ।७।
हे शरणार्थी रक्षा कर्त्ता ।
श्रोता वक्ता करते उर धारो ।८।
हे सत् चेतन आनंद प्रभु ।
आपी शारदाराम सहारो ।९।

———

मुनिकुल अध्यात्म विद्यालय (पृष्ठ ४४ कालम दो से आगे)

हर्षका विषय है कि मुनिकुल अध्यात्म-विद्यालयके आचार्य पद पर आज-कल काशी निवासी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री वेदान्तीजी विराजमान हैं। आप वेदान्तके सजीव मूर्ति हैं। आपको पाकर विद्यालय परमोत्कर्ष को प्राप्त होगा ऐसी आशा है। आपकी शिक्षण शैली मन को संस्कारित करने वाली, सुपाच्य और सरल है। कम पढ़ा-लिखा साधक भी आत्मज्ञान के गूढ़ विषयको धीरे-धीरे ग्रहण करने लगता है।

सम्पादकीय

दैवीकोप का कारण

कभी-कभी साधारण मानव आसन्न दुखसे त्रस्त होकर भगवान, भाग्य और ग्रहोंको दोषी ठहराने लगता है। अपने दुःखोंका कारण वह अन्यको बतलाता है और दुर्घटना, ऋतु-दोष, शीत और लू आदि वायु,जल,देश,कालके निमित्त से आये हुए कष्टको वह भाग्य और दैव कृत कहकर निराश हो जाता है। इसे मनुष्यका व्यवहारिक अज्ञान ही कहा जायगा। वास्तवमें उपर्युक्त दुःखोंका कारण कुछ और ही है। फिर वह कौन सा कारण है जिसके वजह से इस सर्व साधन सम्पन्न वैज्ञानिक युगमें मनुष्य दुःखी है? वह कौन सा कारण है जो बाढ़, तूफान, महामारी, दुर्घटना और युद्धको उत्पन्न कर इस उन्नत बुद्धिवादी युगमें भी संहार कराता है? अन्ततः ऐसा क्यों होता है? इसका केवल एक ही अकाट्य उत्तर है, धर्मका नाश। धर्मका नाम सुनकर हमारे कुछ नवीन विचारोंके भाई भड़कने लगते हैं। इसमें उनका दोष नहीं। ऐसा वे इसलिये कहते हैं कि वे धर्मके सही तत्वको नहीं जानते। उन्होंने अधार्मिकों द्वारा प्रदर्शित धर्मके विकृत रूपको कभी देखा होगा।

सत्य यह है कि अधर्म ही सब दुःखोंका मूल है और अधर्मका मूल कुकर्म है। यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि वायु जल देश, कालके दूषित होनेपर ही मनुष्य रोग, बाधासे पीड़ित होता है। ऐसी बात नहीं कि आज ही हम इन दुःखोंका कारण ढूँढ़ रहे हैं। इसके पूर्व ही हमारे ऋषि-मुनियोंने इस गुत्थी को सुलझाकर निष्कर्ष निकाल लिया है—

एक बार अग्निवेशने भगवान आत्रेयसे पूछा—"भगवन्! किस कारणसे वायु, जल, देश, काल आदिमें विकृति हो जाती है जिससे सामूहिक रूपसे नगर जनपदादि सृष्टिका संहार होता है?"

भगवान आत्रेयने उत्तर दिया—"हे अग्निवेश! वायु आदि सभी तत्वोंके विकृति का मूल कारण अधर्म है, और अधर्मका कारण पूर्वकृत अशुभ कर्म हैं। इस अशुभ कर्म और अधर्म दोनोंका उत्पत्ति कारण प्रज्ञापराध है। जब देश, नगर, निगम या जनपदोंका नेता, मुखिया अथवा राजा धर्म की परवाह न करते हुए अधर्मसे प्रजाके साथ व्यवहार करते हैं तब उनके आश्रित और उपाश्रित नगर-जनपदकी जनता, कर्मचारी एवं व्यापारीगण इस अधर्मको बढ़ाते हैं।"

भगवान आत्रेयकी वाणी अक्षरशः सत्य है। स्पष्ट है कि जब मुखिया अथवा अधिकारी अधर्माचरण द्वारा रिश्वत आदि लेता हो तो उसके नौकर-चाकर देखादेखी अपने मुखियाका पेट भरनेके लिये दूसरोंको कष्ट देकर रिश्वत लेना चाहते हैं। नेतासे प्रारम्भ होकर अधर्म धीरे-धीरे जनतामें फैलता है और अन्तमें वह धर्मको सर्वथा छिपा देता है। जब धर्म लुप्त हो जाता है तब देवता भी उनका त्याग कर देते हैं। उन लुप्तधर्मा-अधर्मप्रधान देवताओंसे त्यक्त देश-जनपद आदिकी ऋतुएँ विकृत हो जाती हैं, जिनके कारण वर्षा और धूप नियमित यथासमय नहीं होती। मेघ दूषित और विकृत

जल वर्षाते हैं। वायु ठीक नहीं बहते हैं। पृथ्वी भूचालसे विकृत और उत्पादन क्षमतासे हीन हो जाती है। जल सूख जाता है। औषधियाँ अपना स्वभाव छोड़कर निर्वीर्य हो जाती हैं। ऐसी स्थितिमें रोग,बाधा, ग्रहकष्ट, भूकम्प, महामारी आदि अस्त्रोंसे नगर जनपदका संहार होने लगता है। मनुष्य अल्पायु होकर क्रमिवत मरने-जीने लगता है। उपर्युक्त दोषोंके फलस्वरूप काम, लोभ, मोह, रोष, अहंकार और क्रोधकी वृद्धि होती है जिसका अन्त युद्ध और महायुद्धमें होता है। अधर्म ही खान-पान और रहन-सहनकी अस्वच्छताको जन्म देता है। जिसके कारण मनुष्य सूक्ष्म रोगाणुओं तथा महामारियों द्वारा अकालमें ही कालका ग्रास बनता है।

अधर्मके कारण ही मनुष्य गुरु, वृद्ध, सिद्ध आचार्य ऋषि-मुनि, वेद, शास्त्र आदि आप्त वचनोंका निरादर कर अहित कर्ममें प्रवृत्त होता है। यह अधर्म ही गुरुजनोंके शापका हेतु है। कभी भी अधर्मके बिना किसी अन्य कारणसे अशुभकी उत्पत्ति नहीं हुई।

अतः दुःख नाशका एकमात्र उपाय है, अधर्म का नाश। जबतक अधर्म बना रहेगा तबतक मनुष्य शारीरिक सुख और निर्भयता नहीं प्राप्त कर सकता है। दुःख और मृत्युका भय आत्मज्ञानीको नहीं होता। जो आत्मज्ञानी नहीं हैं उन भक्तजनों को मृत्यु भयसे रहित केवल धर्म ही कर सकता है। जो धर्मकी रक्षा करता है उसकी रक्षा धर्म करता है। अतः काल और ग्रहोंसे डरनेका कोई कारण नहीं है। आप धर्म-पालन कीजिये तो अष्टग्रह भी धर्म-पालन करेंगे। जैसे मनुष्यका धर्म है प्राणियों पर दया और उनकी रक्षा उसी प्रकार ग्रहोंका भी धर्म है सृष्टिका पालन और रक्षा। जब मनुष्य धर्मका त्याग कर हिंसा, लोभ, क्रोध, स्वार्थ रूपी अधर्मका पालन करता है तब ग्रह भी अपना धर्म छोड़कर सृष्टिका संहार करने लगें तो इसमें आश्चर्य कैसा।

आयुकी रक्षा और वृद्धिके लिये भगवान आत्रेय एक उत्तम औषधि बतलाते हैं।

"मन, वचन,कर्मसे सत्य पालन, प्राणियों पर दया, दान,नाम,जप,भजन,पूजा, सद्पुरुषोंके आचारका अनुपालन, सदाचारका पालन, विषयोंकी शान्ति, सुरक्षित कल्याणकारी जन-पदोंका सेवन, ब्रह्मचर्य पालन,शास्त्रोंका श्रवण, मनन, जितेन्द्रिय ऋषि-मुनियोंका सत्संग, धार्मिक एवं सात्विक पुरुषोंका संग शुभ कर्मों द्वारा धर्मका संग्रह।"

—०—

मुनिकुल अध्यात्म विद्यालय

काशीमें सुड़िया स्थित "मुनिकुल अध्यात्म विद्यालय" जिसका बीजारोपण गत गुरु पूर्णिमाको किया गया था, गुरु परमात्माकी असीम अनुकम्पा से दिन प्रतिदिन उन्नतिकी ओर अग्रसर हो रहा है।

ज्ञातव्य है कि जनवरी १९६२ से विद्यालयके आचार्य पं० सरयू प्रसाद शास्त्रीजी स्वास्थ्य अनुकूल न होनेके कारण त्यागपत्र दे दिये हैं। भगवान आपको स्वस्थ एवं शतायु करें। यही प्रार्थना है।

शेष पृष्ठ ४२ पर देखिए

श्री भद्रसेन जी वैद्य-द्वारा कल्पना प्रेस वाराणसी में मुद्रित तथा प्रकाशित।

परमानन्द संदेश
वर्ष २ अंक ४

माघ २०१८
फरवरी १९६२

रजि० सं०
ए० १६६७

सन्तशिरोमणि

श्री श्री १०८ सद्गुरु बाबा शारदाराम उदासीन मुनि जी महाराज

भोजन करने की आकर्षक मुद्रा में